सांच को आंच नहीं

✻ बनाम आँकि नामश मी आवेद ।
रसानद ना उमीदांरा बा उमेद ।।

भूमिका

धर्म सभाओं के प्राय: उपदेशक जब उन से और कुछ नहीं बन सकता तो अपने व्याख्यानों में श्री स्वामी जी महाराज को ही कोस कर (गालियां दे कर) मन को ठंडा कर लिया करते हैं, साथ ही उन के चार पांच उपदेशक विद्वत्ता प्रदर्शनार्थ सत्यार्थप्रकाश की अशुद्धियां भी निकाला करते हैं, जो अपढ़ मूर्खों के सम्मुख कुछ विशिष्ट विद्वान् समझे जाते हैं। हमने फिरोजपुर, लाहौर अमृतसर, लुध्याना, पिशावर, वजीराबाद, गुजरात, रावल पिंडी, मुलतान, नाहन, सहारनपुर, बनारस, और हरिद्वार में उनके व्याख्यानों को सुना और उनके मासिक पत्र और तीन चार छोटे ट्रैक्ट भी अध्ययन किये। सभी में सामूहिक रूप में वही प्रश्न और तर्क देखे। इन दिनों हमारे पास एक दयालु श्रीमान् ने श्री स्वामी दयानंद सरस्वती की महिमा नाम पत्र प्रेषित किया। जिन्हें एक महोदय शिवनारायण प्रसाद कायस्थ ने लिखा है।

उन्होंने उन सब प्रश्नों को एकत्र करके ५३ पृष्ठ की छोटी साईज़ में यह पत्रिका लिखी है। हम प्रश्नों को देख कर प्रसन्न होते हैं और परमेश्वर जानता है कि यदि सत्यान्वेषणार्थ प्रश्न किये जायें तो+चश्मे मा रौशन दिलेमा शाद।

हम प्रत्येक समय सत्य के विरोधियों को उत्तर देने पर समुद्यत और किसी स्पष्ट प्रश्न की स्वीकृति से कभी इनकार नहीं करते तथा इनकार कर ही कैसे सकते हैं। जब कि हम एक ऐसे नियम के आधीन हैं। जिसके कारण से हम समस्त असत्य मतों से विशिष्ट हैं अर्थात् "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।"

यही कारण है कि हम इस पुस्तिका को भी अपने स्वभावानुसार ध्यान से कई बार पढ़ कर उस का उत्तर लिखने के लिये लेखनी उठाते हैं। पूर्ण आशा है कि इसे पढ़ कर सत्यान्वेषी महानुभाव और सत्य से किसी प्रकार हटे हुए मन अवश्य सत्य की ओर ध्यान देंगे।

प्रश्नों के उत्तर

(आक्षेप) जो लोग स्वामी जी महाराज पर अधिक विश्वास रखते हैं, वह तो यहां तक कहते हैं कि धर्म सम्बन्धी जितने मन्तव्य हैं, सब सत्यार्थप्रकाश में लिखे हुए हैं। यही एक पुस्तक है जो वेद और

✻ भावार्थ...उसके नाम से आरम्भ करता हूँ कि जिसका नाम सदैव रहेगा। जो निराश लोगों की निराशा दूर करके उनकी आशायें पूर्ण करता है। (अनुवादक)

+ हमारी आंख प्रकाश युक्त और हमारा मन प्रसन्न। यह एक फारसी की उक्ति प्रसन्नता के लिये कही और लिखी जाती है। (अनुवादक)

धर्म शास्त्र तथा अन्य सब सत्यशास्त्रों का काम दे सकती है। यदि इस भारतवर्ष का भला (उपकार) होना है तो इसी के साधन से होगा और यदि इस देश की उन्नति होगी तो इसी के द्वारा होगी। स्वामी जी ने हमारे ऊपर बड़ी दयालुता कर के सागर को गागर में भर दिया है। पृ० २

(खंडन) यह आपने जनता को भ्रम में डालने वाले शब्द लिखे हैं। हम ऐसा कदापि नहीं मानते हैं कि वेद और सत्यशास्त्रों का काम भी एक पुस्तक दे सकती है। आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य का विश्वास है कि "वेद सब सत् विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना, सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

वेदों से बढ़ कर हम किसी पुस्तक को सर्वोच्च नहीं मानते और न पवित्र बेद के अतिरिक्त किसी और ग्रन्थ पर हमारे धर्म का आधार है। भारत वर्ष और संसार का भला जो कुछ होगा वह पवित्र वेद की शिक्षा पर आचरण करने और वैदिक धर्म के मानने से होगा। किन्तु अब यह प्रश्न शेष रहा कि सत्यार्थप्रकाश क्या है? इस का उत्तर यह है कि वह आर्यसमाज के संस्थापक, पवित्र वेद के अद्वितीय भाष्यकार श्री स्वामी दयानंद जी महाराज द्वारा लिखित एक वैदिक ग्रन्थ है और उन की ऐसी लिखित ३६ पुस्तकें और भी हैं जिनसे १५ व्याकरण सम्बन्धी और शेष सब धर्म सम्बन्धी हैं उनमें से एक सत्यार्थप्रकाश भी है।

इस में स्वामी जी ने भारतवर्ष ही नहीं किन्तु समस्त संसार के मत मतान्तरों का बहुत ही खोज पूर्ण अन्वेषण से सार यथार्थ अवस्था में लिखा है और उन के समक्ष वैदिक धर्म की विशेषताएं सिद्ध की हैं।

यहां तक ही धैर्य नहीं किया किन्तु वैदिक धर्म के सम्बन्ध में कई आवश्यक बातों का संक्षेपतः वर्णन भी किया है। और अधिकतर न्यायपूर्वक समुचित युक्तियों से सैंकड़ों आक्षेपों की निवृत्ति भी की है। अतः सत्यार्थप्रकाश अन्यमत मतान्तरों के सम्बन्ध में स्वामी जी के अन्वेषण का भंडार और वैदिक धर्म की ओर लोगों का यथार्थ नेतृत्व है किन्तु भूमिका और वेदभाष्य बहुत ही उत्तम अमूल्य ग्रन्थ हैं, जिन में पवित्र वेद के सम्बन्ध में पौराणिक और तान्त्रिकमत वालों के आशीर्वाद मिथ्या आक्षेपों का खंडन और योरोपीय दार्शनिकों के नास्तिकपन के विचारों का निराकरण स्पष्ट बौद्धिकतर्कों से किया है। वाम मार्गियों और मूर्ति पूजकों के समस्त भ्रमों को मिटा कर देवता पूजन और भौतिक पदार्थों के पूजन की भित्तियों को गिरा के ढेर कर दिया है, जिन के कारण पवित्र वेद का सूर्य अपने वास्तविक प्रकाश में संसार में चमक रहा है। यह इन्हीं पवित्र कृतियों का परिणाम है। अन्यथा संस्कृत भाषा और वैदिक शिक्षा से वाममार्गी भाष्यकारों के कारण लोगों की जितनी घृणा हो गई थी, हमारे वर्णन करने के अतिरिक्त आपकी धर्म सभा और उस के समर्थकों से भी तिरोहित नहीं। किसी ने सत्य कहा है कि—

✱ है सत्य भाष्य तेरा मुज़हिरे मतालिबेदीद।
जुबां होती है जिस तरह तरजमाने दिल॥

✱ जिस प्रकार जिह्वा मन के भावों को प्रकट करती है। हे ऋषिवर! इसी प्रकार से आपका सत्यभाष्य दर्शनीय मन्तव्यों का प्रकाशक और दिग्दर्शक है। (अनुवादक)

(आक्षेप) प्रथम सत्यार्थ में पृष्ठ के पृष्ठ मृतक श्राद्ध के समर्थन में रंगे हुए हैं और द्वितीय सत्यार्थप्रकाश में मृतक श्राद्ध का विपरीत खंडन किया। यह प्रैस वालों की भूल नहीं है, स्वामीजी की ही है। पृ० ४, ५ का संक्षेप)

(खंडन) आप का और धर्म सभा के बहुत से पंडितों का यह निराधार आक्षेप है और आर्य समाज के सदस्यों की दृष्टि में उसकी कुछ भी महत्ता नहीं है। पक्षपात वश आप मानें अथवा न मानें किन्तु आपको वास्तविक स्थिति से अवगत करते हैं। आप और पाठक उस पर कुछ विचार करें :—

सत्यार्थप्रकाश प्रथम एडीशन १८७५ ईस्वी में वाराणसी में प्रकाशित हुआ है। उस ही वर्ष की प्रकाशित कुछ और पुस्तकें भी हैं प्रत्युत उस से एक दो वर्ष पूर्व की भी।

सर्वतः प्रथम जो पुस्तक आर्यसमाज के लिए प्रकाशित हुई। वह भाष्य सहित संध्योपासना है। यह संस्कृत भाषा में आश्विन संवत् १९३१ तदनुसार ११ अक्टूबर १८७४ ईस्वी आर्य प्रकाश प्रैस बम्बई में प्रकाशित हुई। उस के २० और २१ पृष्ठ पर मृतक श्राद्ध का खंडन है। पुनः यह पुस्तक उसी वर्ष नवल किशोर प्रैस में प्रकाशित हुई उसमें भी पृ० १० पंक्ति ३ में मृतक-श्राद्ध का खंडन है। केवल इतना ही नहीं प्रत्युत २ अगस्त १८७५ ईस्वी को स्वामी जी ने पूना में जो व्याख्यान दिया है, उस में भी मृतक श्राद्ध का खंडन किया है। यहां तक हो नहीं किन्तु प्रथम संस्कारविधि में भी मृतक श्राद्ध का खंडन किया है जो संवत् १९३२ विक्रमी में प्रकाशित हुई थी। उसके अतिरिक्त जो व्याख्यान स्वामी जी ने १८७४ ईसवी में हाथरस में दिया था उस में भी मृतक श्राद्ध का खंडन किया था। मुन्शी कन्हैया लाल अलखधारी ने अपनी पत्रिका में उस पर टिप्पणी भी दी थी।

इनके अतिरिक्त वेद भाष्य भूमिका जो भाद्रपद शुदी सम्वत् १९३३ मिक्रमी तदनुसार २० अगस्त १८७६ ईसवी को प्रकाशित हुई, उसके पृ० २५१ से २६६ तक मृतक श्राद्ध का खंडन विद्यमान है। वेदभाष्य के साथ पूर्व ही यह विज्ञापन दिया गया कि मृतक श्राद्धवेद विरुद्ध है।

इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने उस छपी हुई भूल के ज्ञात होते ही एक विज्ञापन भी छाप कर प्रकाशित कर दिया था। अतः आर्यसमाज में सामूहिक भावना से मृतक श्राद्ध को वैदिक माना कभी भी उचित नहीं समझा गया किसी सदस्य का ऐसा विश्वास भी नहीं है और न कभी आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् ऐसा सिद्धान्त रहा। अतः यह आक्षेप सर्वथा निराधार है। अवश्य प्रैस वालों की भूल है। क्योंकि आर्यसमाज की स्थापना करने से कुछ समय पूर्व स्वामी जी इस विचार को अवैदिक समझ चुके थे। आर्यसमाज के सदस्य ऐसे व्यर्थ आक्षेपों से कुछ की भय नहीं खाते क्योंकि आंरा कि हिसाब पाकस्त अज़ मुहासबत चिह बाक"। ×

(आक्षेप) स्वामी जी पूर्व के समस्त ऋषिमुनियों से अधिक योग्यता रखते थे, वह स्वयं इसके साक्षी हैं। जैसा कि वह लिखते हैं कि "जो ब्रह्मादिक महर्षियों के बनाए ग्रन्थ हैं उन को परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इन में वेद विरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूं"

इस अन्तिम वाक्य में स्वामी जी ने स्पष्ट लिख दिया है कि ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में वेद विरुद्ध वचन हैं। (पृ० १२-१४)

+ जिसका हिसाब ठीक है उसे हिसाब देने से क्या भय हो सकता है। (अनुवादक)

(खंडन) भ्राता जी ! आप इस का अभिप्राय सर्वथा नहीं समझे। क्योंकि स्वामी जी ने वेद को स्वतः प्रमाण माना है और समस्त ऋषिमुनि भी इनहें स्वतः प्रमाण मानते थे अतः आवश्यक हुआ कि स्वतः प्रमाण और परतः प्रमाण के अर्थ किये जाते। यदि सब ऋषियों ने वेदों को स्वतः प्रमाण माना है तो स्पष्ट प्रगट है कि उन्होंने किसी ऋषि अथवा किसी ग्रन्थ को किसी बात को जो वेद विरुद्ध है, उसे प्रमाण नहीं माना एक महात्मा का वचन है कि:—

स्मृतेर्वेदविरोधेतु परित्यागो यथाभवेत्।
तथैवलौकिकं वाक्यं स्मृतिबाधे परित्यजेत्॥

अर्थात् जिस प्रकार स्मृति वचन वेदविरुद्ध होने से त्यागने योग्य है उसी प्रकार स्मृति के विरुद्ध लौकिक बातें त्याग देनी चाहियें।

एक और महात्मा ने भी कहा कि:—

श्रुति स्मृति पुराणानां विरोधोयदि दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणं तु द्वयोर्विरोधे स्मृतिर्वरा॥ (व्यास स्मृति १।४)

अर्थात् श्रुति, स्मृति पुराण (इतिहास) का जहां विरोध हो, वहां श्रुति स्मृति के विरोध में श्रुति को मानना चाहिये और स्मृति तथा पुराणों के विरोध में स्मृति बलवान् है।

ऐसा ही मनु ने लिखा है कि जो स्मृति वेद विरुद्ध हो वह त्यागने योग्य है। महाभाष्य में लिखा है कि:—

नैवेश्वर आज्ञापयति नापिधर्मसूत्रकारा पठन्ति॥ महाभाष्य १।१।६।४१

अर्थात् न तो ईश्वर ने वेद में आज्ञा दी है और न धर्म सूत्रकार ऋषि आज्ञा देते हैं।

पुनः हम श्रुति और स्मृति के विरुद्ध किसी का वचन कैसे स्वीकार कर सकते हैं? मम महोदय ! यही अभिप्राय स्वामी जी का है और इससे तो संभवतः किसी स्वार्थी के अतिरिक्त कोई बुद्धिमान् इन्कार नहीं कर सकता कि स्मृतियों, ब्राह्मणों, इतिहास और सूत्रों तक में प्रक्षप (मिलावट) कर दिया गया है। चाहे वह इच्छा से हो अथवा अनिच्छा से ही हो।

निरुक्त में भी केवल ५ प्रकाशनों के देखने से पचासों स्थानों पर पाठभेद दिखाई दिया है। जो प० सत्यव्रत सामश्रमी ने प्रगट कर दिया है। (देखो निरुक्त एशियाटक सोसाइटी कलकत्ता द्वारा प्रकाशित)

यही अवस्था मनुस्मृति की है। ब्राह्मण ग्रन्थ भी इससे सुरक्षित नहीं। वाममार्गियों के प्रक्षेप से वह कदापि नहीं बचे। उनका बच सकना संभव भी न था क्योंकि प्रथम तो उनकी कोई संख्या नियत नहीं। द्वितीय उनकी सुरक्षा का कोई समुचित और नियमित प्रबन्ध नहीं। और वाममार्गियों के युग में तो विशेषकर उन्हीं को वेद माना जाता था "अंधेर नगरी चौपट राजा" की भान्ति उन्हीं को वेदों का स्थानापन्न समझा गया। तन्त्रों के मूल भी यही ग्रन्थ ठहराए गये और उन्हीं के प्रमाण प्रत्येक स्थान पर वाम मत के ग्रन्थों में पाए जाते हैं। अतः इनमें वेदविरुद्ध वचनों के मिलाने से कौन साहसी पुरुष है जो आर्यसमाज के सम्मुख इन्कार कर सके। हम एक दो नहीं, बीसियों प्रमाण देने को समुद्यत हैं।

(आक्षेप) स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश पृ० ३०६ पर लिखा है कि रामनाम स्मरण निष्फल है। हरि, राम, कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती नाम स्मरण से पाप कभी नहीं छूटता। चलो भगवद् भजन और राम नाम स्मरण से तो छुटकारा मिला।

(खंडन) निःसन्देह, राम, हरि इत्यादि के नाम स्मरण से पाप नहीं छूटते। दंड प्राप्ति के बिना पाप छूट भी नहीं सकता और वेदोक्त पद्धति के अनुसार राम, हरि, कृष्ण यह तीनों परमेश्वर के नाम नहीं हैं। इनमें से पहिला नाम परशुराम, बलराम और रामचन्द्र इन तीनों का अथवा तीनों में से प्रत्येक का है। हरि—बन्दर और घोड़े का नाम है। कृष्ण-कृष्णचन्द्र और व्यास जी का नाम है और कृष्ण पक्ष अर्थात् १५ अंधेरी रात्रियों का भी नाम है, परमेश्वर का नाम कदापि नहीं और वेद-भगवान् के किसी मंत्र में अथवा निरुक्त आदि किसी वैदिक कोष में भी परमेश्वर के यह नाम नहीं लिखे। राम अयोध्यावासी शिव कैलाशवासी और कृष्ण द्वारिकावासी के ईश्वरीय अवतार माने जाने के पश्चात् यह नाम परमेश्वर के कल्पित किये गये। अन्यथा इससे पूर्व किसी ग्रन्थ में यह नाम परमेश्वर के नहीं। अतः इन नामों का जाप पाप छुड़ाने के अर्थ करना पाप का भागी बनना है क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि ईश्वर को छोड़कर जो किसी देवता की उपासना करता है वह पशु है। शेष नारायण, शिव और भगवान् में से सारे तो नहीं किन्तु एक दो अवश्य वेद में प्रयुक्त हुए हैं और ऋषि मुनियों ने तीनों नाम ईश्वर के नाम में प्रयुक्त किये। इनके जाप करने में पाप नहीं है। स्वतः यह उत्तम हैं किन्तु (§)तोबा वालों की भान्ति पाप इनके जाप से भी नहीं छूट सकता। वह तो फल प्राप्ति से ही छूटेगा।

+ तस बीह बदस्ते ज़ाहिद चश्मश बमाले मर्दुम।

कबीर जी ने भी कहा है कि :—

"माला फिरी न मन फिरा, फिर-फिर गयो शरीर।"

अतः (माला के साथ नाम स्मरण भी) सर्वथा व्यर्थ और निरर्थक कार्य है। वास्तव में अपने ऊपर मनः तोष के लिये यह एक प्रकार की छल-कपट की रस्सी है। इसीलिये स्वामी जी ने इसका निषेध किया है। हां, एकान्त में ईश्वर चिन्तन और स्मरण को किसी स्थान पर बुरा नहीं कहा किन्तु उसको आज्ञा दी है (देखो वेदभाष्यभूमिका में प्रार्थना विषय)

जिस प्रकार स्वामी जी ने लिखा है उसी प्रकार पातञ्जलि जी ने योग में लिखा है कि—

तस्यवाचकः प्रणवः, तज्जपस्तदर्थ भावनम् ॥ योग पाद १

अर्थात् ईश्वर परमात्मा का वाचक सबसे उत्तम नाम ओ३म् है। योगीजन वा उपासक को चाहिये कि ओ३म् नाम का अर्थों को समझकर जप करे। क्योंकि सुश्रुत में धन्वंतरि जी ने कहा है कि—

यथाखरश्चन्दनभार वाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य। एवं हि शास्त्राणि बहून्यधीत्य········॥

जैसे गधे के ऊपर चंदन लादने से वह बोझ को जानता है किन्तु चंदन को नहीं। ऐसे ही शास्त्रों के पाठमात्र करने से यदि अर्थ से वंचित है तो केवल गधा है।

(आक्षेप) हवन से भी स्वतन्त्रता मिल जाती है। होम क्या है? वायु शुद्धि की प्रक्रिया। (पृ० ६)

(§) मुसलमानों में तोबा=प्रायश्चित से पाप-क्षमा का सिद्धान्त माना जाता है।

+ तसबीह=माला तो भक्त के हाथ में है और नज़र लोगों के मालों पर है। (अनुवादक)

(खंडन) यह आपने आर्यसमाज से अथवा स्वामी जी से ही विरोध नहीं किया किन्तु समस्त ऋषियों और मुनियों और वेद भगवान् से विरोध किया है। ×हज़रत ! ऋषियों की यही आज्ञा है और आपके माने हुए भगवान् कृष्ण जी ने भी ऐसा ही लिखा है (देखो गीता ३।१४, १५)

मनु जी ने भी ऐसा ही लिखा है (देखो मनुस्मृति ३।७०,७६)

और आपके माने हुए शिव स्वरूप शंकराचार्य ने भी ऐसा ही स्वीकार किया है।

(देखो गीता भाष्य अ० ३)

निःसन्देह यज्ञ का फल वही है जो वेद में लिखा है और वैसा ही स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश, सन्ध्या और भूमिका में वर्णन किया है। आपका आक्षेप बुद्धिमत्ता से रहित है। सबको ईश्वराज्ञा पर यथा संभव चलना चाहियें।

(आक्षेप) भले चंगे में आचमन और मार्जन करना निष्फल है क्योंकि आचमन स्वामी जी के लेखानुसार कफ़ और पित्त की निवृत्ति के लिये हैं और मार्जन आलस्य दूर करने के हेतु है और जल प्राप्त न हो तो धन्यवाद है। (पृ० १६)

(उत्तर) आचमन का फल वही है जो स्वामी जी ने लिखा है। देखो मनुस्मृति में भी लिखा है (अ० २।५३,६०,६१,६२,७०) इनमें आचमन का वर्णन है। ५३ में तो आचमन भोजनान्त में लिखा है। इसका अभिप्राय केवल वैद्यक के नियमानुसार पाचन शक्ति की सहायतार्थ जल का प्रयोग है क्योंकि वैद्यक शास्त्र की रीति से भोजन के बीच में जल नहीं पीना चाहिये। ६०, ६२ तक सन्ध्या में आचमन की विधि है। वहां भी पवित्रता और शुद्धता से अभिप्राय है। परन्तु संभवतः आपके कोमल विचार में कफ़ निवृत्ति और पित्तनिःवृत्ति शुद्धता नहीं ? कंठ की शुष्कता का दूर होना ही वहां अभिप्रेत है क्योंकि प्राणायाम में प्रायः ऐसा होता है कि प्रात.काल उठकर भी प्रायः यह अवस्था होती है। जो लोग संन्ध्या करते हैं वह इस बात से अच्छी प्रकार परिचित हैं। आप नहीं जानते तो अपने वास्तविक बन्धु आर्य भाईयों से आचमन के लाभ पूछिये जो नित्यप्रति संध्या करते हैं। तात्पर्य यह कि प्रत्येक प्रकार आचमन से कफ़ और पित्त की निवृत्ति अभिप्रेत है, चाहे वह कंठ की हो अथवा जिह्वा की हो।

श्लोक ७० में भी वेदपाठ से पूर्व आचमन करने की आज्ञा है। यहां भी कंठ की कफ़ पित्त निवृत्ति अभिप्रेत है क्योंकि श्वास की तीव्रता से कंठ शुष्क हो जाता है और व्याख्यान में जलपान का अभिप्राय भी यही है। यदि यह बातें न हों अथवा जल न हो यदि हम आचमन और मार्जन न करें तो संध्या में कोई रुकावट नहीं। जल से आलस्य निवृत्ति तो एक स्पष्ट सी बात है। निद्रा निवृत्ति का भी यह उत्तम उपाय है और एक प्रकार का सैल्फ़ मैस्मरेज़म भी है, यह है स्वामी जी की फिलासफी, अब आपको चाहिये कि यज्ञ, मार्जन और आचमन के सम्बन्ध में शिव और नारायण का नाम लेकर हमें कोई पौराणिक फिलासफी बताइये।

☼ अगर सिद्कदारी बियारो बिया।

(आक्षेप) संस्कारविधि में यज्ञोपवीत करने वाले बालक को तीन दिन का उपवास करना लिखा

× महोदय।

☼ यदि सत्यता रखता है तो उस मैदान में आ और उसी पर पहुंच। (अनुवादक)

है और सत्यार्थप्रकाश पृ० ४४१ पर लिखा है कि किसी का उपवास सत्य नहीं है. व्रत से कष्ट होता है। इन दोनों में परस्पर विरोध है। स्वामी जी की अन्तिम आज्ञा भी है कि उपवास करना सत्य नहीं, जिसमें आराम मिले वही सत्य है। (पृ० १६)

(खंडन) शोक कि लोग जान-बूझकर सत्य से मुख छिपाया करते हैं। देखिये कि यह कैसी बुरी बात है। मेरे हज़रत ! वहां ऐसा कदापि नहीं।

सत्यार्थप्रकाश पृ० ४४०, ४४१ में स्वामी जी ने इस बात का वर्णन किया है कि जैनी लोग जो हिन्दुओं के व्रतों को बुरा कहते हैं और अपने व्रतों को अच्छा, यह उनकी भूल है। वहां के ठीक शब्द यह हैं कि—"अपने यच्च खाणादि व्रतों को अतिश्रेष्ठ और नवमी आदि को दुष्ट कहना मूढ़ता की बात है। क्योंकि दूसरे के उपवासों की तो निन्दा और अपने उपवासों की स्तुति करना सज्जनों का काम नहीं। हां, जो सत्य भाषणादि व्रत धारण करते हैं, वे तो सबके लिये उत्तम हैं, जैनियों और अन्य किसी का उपवास सत्य नहीं है।" (समु० १२)

शेष रही संस्कारविधि की बात, उसमें भी ऐसा नहीं। वहां तो तीन दिन दूध, जौ, आमिक्षा (जो दूध, दही, चीनी, केसर के संमिश्रण से बनता है) के खाने पीने की आज्ञा है। अर्थात् तीन दिन केवल इन तीनों में से कोई भोजन खावे। तात्पर्य यह है कि सत्वगुणयुक्त भोजन करे जिससे वह संयम में रहना सीखे और इससे आगे समस्त व्रत अर्थात् नियमों को पालन करने में तत्पर हो, वह तो यज्ञोपवीत का एक साधन अथवा पद्धति ऋषि प्रणीत है। अतः आपका आक्षेप आशिरः पाद निराधार है। बतलाइये ! आपने यह कितना वास्तविकता के विरुद्ध लिखा कि किसी को उपवास से नहीं व्रत से कष्ट होता है। किन्तु यह सर्वथा सत्यार्थप्रकाश पृ० ४४१ में नहीं है, और संस्कारविधि में भी वैसा नहीं है। शोक ! कि लोग दोषारोपण के लिये सत्य की कुछ भी अपेक्षा नहीं रखते।

(आक्षेप) यज्ञोपवीत की इससे अधिक कोई प्रतिष्ठा नहीं कि उसे स्वामी जी ने विद्या का चिह्न माना है। (सत्यार्थप्रकाश पृ० ३८५)

(खंडन) भाई कायस्थ जी ! आप यज्ञोपवीत को क्या जानें ? क्षमा कीजिये। अकारण दोषारोपण से क्या लाभ ? यज्ञोपवीत वास्तव में विद्या का चिह्न है। बड़ा स्पष्ट प्रमाण इसका यह है कि उसके पश्चात् ही विद्या का आरम्भ होता है। स्वयं यह शब्द भी यज्ञ+उपवीत इन दो से संयुक्त है है जिसके अर्थ स्वामी जी के अर्थों के अतिरिक्त नहीं हैं। पंच यज्ञों (ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ, बलि वैश्वदेव यज्ञ) का अधिकार भी यज्ञोपवीत के पश्चात् प्राप्त होता है और ब्रह्मयज्ञ के एक अर्थ वेदाध्ययन के भी हैं। उसी समय से उसे गायत्री सिखाई जाती है। शास्त्रों में कहीं नहीं लिखा कि जो विद्या न पढ़े उसे यज्ञोपवीत दिया जाए। तीन आश्रम जिन्हें वेदानुसार पांच यज्ञों का करना कर्तव्य है। तीन वर्ण जिनके लिये वेदाध्ययन आवश्यक है। वही यज्ञोपवीत धारण करने के अधिकारी हैं। तीन अवस्थाओं में यज्ञोपवीत का अधिकार है और यही कारण है कि यज्ञोपवीत के तीन तार होते हैं। स्वयं परमेश्वर का निज नाम ओ३म् भी तीन अक्षरों से युक्त है। व्याहृतियां तीन हैं। गायत्री के भी तीन पाद हैं उसका उच्चारण भी तीन भाग करके किया जाता है। यह भी तीन तार होने का कारण है। तीन गांठें भी तीन प्रसिद्ध मन्तव्यों का बाह्य तथा आभ्यान्तरिक रहस्य है—ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययन और ईश्वर भक्ति अर्थात् उसकी आज्ञा का पालन करना। ऐसे-ऐसे बीसियों

पवित्र नियमों पर इसका आधार है और सबका मूल विद्या है। हमारे विद्वान् मित्र पं० भीमसेन जी ने भी इस पर अच्छा प्रकाश डाला है।

अतः मनु जी ने लिखा है कि जो विद्या न पढ़े अथवा सन्ध्यादि पंच यज्ञ न करे उससे यज्ञोपवीत उतार कर शूद्रों में प्रविष्ट करना चाहिये। इसीलिये महाभारत में लिखा कि :—

ब्राह्मणोपिक्रिया हीनः शूद्रादप्यवरोभवेत्।
शूद्रोपि व्रत संयुक्तो ब्राह्मणः सः युधिष्ठिर॥

ब्राह्मण—द्विज अपनी नियत वेदाध्ययन क्रिया रहित होने पर शूद्र हो जाता है और शूद्र ब्रह्मचर्यादि व्रत धारण करने से ब्राह्मण बन जाता है।

शास्त्र की विधि यह है कि यज्ञोपवीत नाभि से ऊपर होना चाहिये, घुटने तक नहीं जिससे कान पर चढ़ाने की आवश्यकता न हो। दोष यूं आया कि ब्राह्मण अथवा पुरोहित अपने शरीर के नाप से बनाते हैं यजमान के ढंग से नहीं। क्योंकि ऋषि स्वतन्त्र, महात्मा, एकान्त सेवी होते थे। अतः यह उनका ✎ "कम खर्च बाला नशीं" पदक है। यदि राजा लोग इसके निर्माता होते तो संभवतः सुवर्ण का होता। किन्तु यह *"बर्गे सब्ज़स्त तोहफ़ाए दरवेश" के अनुसार एक साधारण वस्तु अर्थात् सूत से बनाया जाता है। जिससे कुछ व्यय न हो और सब लोग सत्य धर्म के पवित्र नियम को धारण कर सकें। पूर्वकाल में स्त्रियां भी इसे पहनती थीं। वेद में इसका कोई निषेध नहीं है किसी ऋषि का कोई सूत्र भी स्त्रियों के यज्ञोपवीत धारण का निषेध नहीं करता। किन्तु पुरुषों के शूद्र होने के कारण वह महाशूद्र हो गईं। एक समय था जब यह पवित्र धर्म और विद्या का सम्बन्ध समस्त संसार में फैला हुआ था जैसे कि आजकल विद्युततार। किन्तु अब केवल पारसियों और आर्यों के अतिरिक्त किसी जाति में नहीं है। ईश्वर करे कि लोग सत्यधर्म को ग्रहण करके इस पवित्र बन्धुत्व को (यज्ञोपवीत द्वारा) स्वीकार करें।

(आक्षेप) सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २५६ में लिखा है जिसका सार यह है कि डाढ़ी-मूँछ कभी नहीं रखनी चाहिये और गरम देश में चोटी तक मुंडवा डालनी चाहिये। क्योंकि भारत गरम देश है। यहां के निवासियों को स्वामी जी के इस उपदेश के अनुसार शिखा तक मुंडवा देनी चाहिये और डाढ़ी-मूँछ चट करा देनी चाहिये। अन्यथा घाम के कारण बुद्धि में गड़बड़ हो जाएगी।

(खंडन) आपने बहुत धोखा खाया और लोगों को भ्रम में डालना चाहा। यह स्वामी जी ने मनुस्मृति का अनुवाद लिखा है। मनु २/६५ के अनुसार ब्राह्मण के सोलहवें, क्षत्रिय के बाईसवें, और वैश्य के चौबीसवें वर्ष में केशान्त कर्म—मुंडन हो जाना चाहिये।

मनु १२/२६६ में है कि सर्वथा मूंड मुंडाई अथवा जटाजूट रहे या केवल शिखा रखे। जैसे उसकी इच्छा हो करे। ब्रह्मचारी के लिये कोई निषेध नहीं है। ऐसा ही संन्यासी के लिये ६/५२ में

✎ न्यून व्यय और ऊंचा बैठना।
* हरा पत्ता ही फकीर का तोहफा=भेंट है। (अनुवादक)

लिखा है और ६/६६ में भी बाह्य चिह्नों को धर्म नहीं माना है और इन सबका आधार मनु २/६६ का वह प्रमाण है।

इन सब प्रमाणों को मिलाने से स्पष्ट सिद्ध है कि यह सब वैकल्पिक हैं। शाश्वत धर्म के साथ इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह केवल जाति को प्रथाएं हैं और जहां तक इनमें लाभ है उन्हें रखना उचित है। अन्यथा कोई आवश्यकता नहीं।

आप विचार करें कि भारत में मेहतर, भंगी, चमार, भील, गोंड, सांसी, बावरिये, मेघ यह सब शिखाधारी हैं। इनके अतिरिक्त चारों वर्ण सभी शिखाधारी हैं।

आर्यावर्त के अतिरिक्त चीन, ब्रह्मा, अनाम, सियाम, जापान, तिब्बत, लंका में बौद्ध, जैन, सब शिखाधारी हैं। चीन के मुसलमान भी शिखा रखते हैं। शिया लोग भी प्रायः चोटी रखते हैं। साधारणतः मुसलमानों में सैंकड़ों लोग अपने बच्चों के चोटी रखना पवित्र मानते हैं। किन्तु इसके साथ ही बंगाल के लाखों हिन्दु चोटी नहीं रखते। गुजरात और बम्बई के सहस्रों व्यक्ति शिखाधारी नहीं। गुजरात, कठियावाड़ में सहस्रों हिन्दू धाम आदि के कारण सिर के मध्य के बाल शिखासहित कतरवा देते हैं पुनरपि हिन्दू हैं, इनमें ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य आदि सभी में यह प्रथा है। किन्तु वहां के बोहरे मुसलमान भी रखते हैं। हिन्दुओं में लाखों संन्यासी चोटी नहीं रखते और सहस्रों मुस्लिम फ़क़ीर शिखाधारी हैं।

अब बताइये कि शिखा से आप क्या निर्णय कर सकते हैं? कुक्कट के सिर पर भी चोटी है जिसके कारण संस्कृत में उसे शिखी कहा जाता है। हुदहुद नाम के पक्षी के सिर पर भी शिखा होती है।

शिखा के अर्थ सर्वोच्च वस्तु के हैं। तराजू की शिखा भी होती है जिसे पकड़ कर किसी वस्तु का वज़न किया जाता है। इसी प्रकार हिमालय पर्वत और वृक्षों को चोटियां भी होती हैं। किन्तु इससे किसी धर्म का निर्णय नहीं होता। सहस्रों दृढ़ हिन्दुओं की शिखाएं वृद्धावस्था में गिर जाती हैं, कभी-कभी रुग्णावस्था में और युवावस्था में भी चांद निकल आती है। कहां तक इसका निर्णय कर सकते हैं? हमें आश्चर्य है कि शिखा से धर्म का निर्णय कैसे हो सकता है?

शेष रही दाढ़ी और मूंछ की बात तो काशी के समस्त ब्राह्मण दोनों को चट कर देते हैं। काशी की बात ही क्या है? काश्मीर और पंजाब को छोड़कर अन्य सभी हिन्दुमात्र मुंडवाते हैं ×

सैंकड़ों राजपूत भी मुंडवाते हैं तथा भद्रा पर तो सब हिन्दुमात्र मुंडाते हैं+

अब बताइये धर्म कहाँ रहा? जिन जातियों का मुसलमानों से मेल अधिक रहा अधिकतर वही दाढ़ी प्रेमी हैं यथा कश्मीरी पंडित, राजपूत, कायस्थादि।

अतः दाढ़ी का रखाना, न रखना धर्म की बात नहीं। यदि कोई रखे तो उसकी इच्छा मुंडवावे तो भी उसकी इच्छा। अकबर सम्राट् जैसे बली राजाओं ने भी भारत की प्रथानुसार दाढ़ी को मुंडवाते

× अब तो कश्मीरी और पंजाबी भी प्रायः मुंडवा देते हैं। (अनुवादक)

+ अब आर्यसमाज के प्रचार से यह प्रथा समाप्त होती जा रही है। (अनुवादक)

रहना ही आवश्यक समझा था, दूसरों की बात ही क्या है ? इसका दीन और धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। मुसलमानों में सहस्रों मुंडवाते और सहस्रों रखते हैं। सैनिक मुसलमान तो प्रायः टर्की में भी मुंडवाते हैं। विदेश में कृत्रिम डाढ़ियाँ भी बिकती हैं। कुछ एक पशुओं के डाढ़ी मूंछ भी होती है। एक महात्मा ने क्या ही अच्छा कहा है :—

साईं से तो प्रीत रख, सन्तां सील स्वभाओ।
भांवे लंबे केस रख भावें घोट मुंडाओ॥

हमें आज तक कोई ऐसी युक्ति प्राप्त नहीं हुई और न कोई श्रुति मिली है कि हम उन्हें धर्म में सम्मिलित करें। अतः बाधित हैं किन्तु हमारा और हमारे कई भद्र पुरुषों का यह विचार है कि विधर्मियों के आक्रमणों के पश्चात् हमारे भाईयों ने इसे जातीय और धार्मिक चिह्न नियत किया था कि जो शिखा रखे वह अपना सहायक अथवा स्वजातीय माना जाता है। अतः वह चिह्न जिसमें ब्राह्मण से लेकर भंगी तक सब हमारे सहायक हैं वह शिखा का रखना है। जब तक सब जगत् के लोग वैदिक धर्म को स्वीकार न करें तब तक शिखा रखना अनिवार्य समझा जाए क्योंकि इन मतों में से कुछ के यहां शिखा रखनी पाप समझा जाता है अतः अवश्य शिखा रखनी उचित और आवश्यक है।

(आक्षेप) छूतछात का विचार व्यर्थ है। इसमें सत्यार्थप्रकाश पृ० ३६३ में सिद्ध किया है कि स्वामी जी ने लिखा है कि शूद्र के हाथ का भोजन खाना चाहिये अर्थात् सखरी निखरी कुछ नहीं। पृ० १८

(खंडन) यह आक्षेप उस अज्ञानता का है जिसकी सीमा विचार से बाहिर है। महोदय ! आप को ज्ञात नहीं कि भारत की प्रथा और व्यवहार क्या है ? हम आपको इसकी समस्त व्यवस्था सुनाते हैं और पुनः ज्ञात करेंगे कि सखरी निखरी कहाँ है ?

पंजाब में सभी जातियां कहारों के हाथ की बनी रसोई खाती हैं। कान्यकुब्जों और गौड़ों में कहार का आटा गूंधा हुआ प्रयोग में लाना उचित समझा जाता है। कहार चौका से बाहिर बैठकर रोटी बेल बेल कर चौका में देता जाता है और अन्दर कान्यकुब्ज पकाता जाता है और नाई उनकी पकी हुई पूरी को उठा कर बिरादरी में पहुंचा सकता है। कशमीरी पानी भरने वाली स्त्रियां अथवा पुरुष मुसलमान हैं। वहां लोग जब भात पकाते हैं तो मुसलमानों की छूतछात का कोई विचार नहीं करते। यदि पति राजकीय कार्यालय की सर्विस में है तो भात बरतन] में रख कर मुसलमानों को दे दिया जाता है जिस से वह उसे कचहरी (न्यायालय) में पहुंचा आवे। काबुल में पानी भरने वाली चौका देने वाली, आटा गूंधने वाली, दाल चढाने वाली, बरतन मांजने वाली मुसलमान स्त्रियां हैं। पंजाब में मुसलमानों के भुने हुए दाने खाते हैं। अलीगढ़ और भारत के मध्यभागों में मुसलमानों के हाथ की बनी हुई रेवड़ियाँ खाते हैं और पापड़ भी खाये जाते हैं। कहारों के बने हुए चड़वे सभी ब्राह्मण खाते हैं। विशेषतः कान्यकुब्ज, गौड सास्वत चरसा का पानी राजस्थान, फिरोज़पुर, हिसार और भारत में सभी पीते हैं। कश्मीरी मिथिल, कान्यकुब्ज, बंग ब्राह्मण और सारस्वत मांस खाते हैं। वैराग्यों के चेले सीत प्रसाद खाते हैं और गोकुल गोसाईयों के चेले उनके झूठे (उच्छिष्ट) भोजन को खाते हैं। सहस्रों, लाखों हिन्दू प्रत्येक वर्ण के वेश्याओं के यहां जाते हैं और वाराणसी, मथुरा, मेरठ, बरेली, देहली

जैसे नगरों में तो प्रायः तथाकथित उच्च हिन्दुओं ने वेश्याएं रखी हुई हैं। सिन्ध में किसी के हाथ का खाना न खाना इस का कोई चिह्न शेष नहीं है।

रामचंद्र जी ने भीलनी के झूठे बेर× खाए, कृष्ण जी ने कुब्जा के घर में भोजन खाया✓

जरासन्ध के घर काल यवन अतिथि बन कर रहा। मनसूरदेव तहसील जीरा फिरोजपुर जनपद एक क्षत्रियों के बरात गई थी आग जलाने का कार्य चूहड़ों (जमादारों) के जिम्मा था और नाईन भोजन बनाती थी। पर्वती प्रदेशों में नीच से नीच समझी जा रही जातियों से बरतन मांजने का कार्य कराते हैं। गुजरात काठियावाड़ में राजपूतों और मुसलमानों का हुक्का एक है। समस्त पश्चिमी और उत्तरी देशों में मुसलमान यदि चटाई पर बैठा रहे तो उच्च जातीय हिन्दू पूरी खा लिया करते हैं। कनखल की वेश्याओं के घरों में ब्राह्मण एकादशी आदिक की कथा करते और श्राद्धों की रसोई जीमते हैं।

समस्त भारत के लोग चूहड़ों और भंगियों के हाथ का बना हुआ गुड़ खाते हैं और घी तथा दूध तो सभी के हाथ का लोग प्रयोग में लाते हैं।

राजस्थान में सखरी निखरी का कोई भेद नहीं। बम्बई और मद्रास में भी सखरी निखरी का भेद कुछ पाखंडियों के अतिरिक्त किसी में नहीं। समस्त भारत के लोग शूद्रों के हाथ का खाते हैं। पुराणों के कथनानुसार स्त्रियाँ शुद्र हैं, सभी इन के हाथ का खाते हैं। सब तम्बाकू सेवी लोग चूहड़ों का बनाया हुआ तम्बाकू पीते हैं। मट्टी के बरतन मुसलमान कुम्हारों के बनाए हुए प्रयोग में लाते हैं। कायस्थ, बंगाली, और पंजाब के प्रायः मद्यपान करने वाले मुसलमानों के हाथ की बनी हुई शराब लेकर-मुसलमान तो कब हाथ लगाते हूंगे-उन से नीच जातियों की बनाई हुई शराब और सोडा वाटर प्रयोग में लाते हैं। वाम मार्गी भंगिन तक से संयोग करते और सब वर्णों को भैरवीचक्र में एक समझते हैं और यह मत सब वर्णों और चारों दिशाओं में विद्यमान है। अरट के कूप का जल सभी पीते हैं। सहस्रों हिन्दू कबीर, जौलाहे मुसलमानों के अनुयायी हैं। सहस्रों कायस्थ हसन हुसैन को मानते हैं और ताजिया बनाते हैं। कई लोगों के नाम ही हुसैन बख्श हैं। हैदराबाद दक्षिण, हैदराबाद सिन्ध, ग्वालियर, कश्मीर, लखनऊ, पटियाला में इस की प्रथा है। हमारे एक कायस्थ मित्र ने फिरोजपुर में ताजिया के नीचे से अपना बालक निकलवाया था। कई लोग ताजिया के साथ प्रार्थना लिख कर बाँधते हैं। सखी सरवर के अनुयायी हिन्दू वहाँ सब अनुचित कार्यवाई करते हैं और यही अवस्था निगाहे और शैख सिद्दू की है। कई कायस्थ नमाज पढ़ते और रमजान मास में व्रत रखते हैं। कश्मीरी मांस खाते किन्तु पलांडु सेवन नहीं व रते। बनिये, ब्राह्मण, गौड़ प्याज का बीज कलोंजी खाते हैं किन्तु प्याज नहीं खाते। कान्यकुब्ज लहसन खाते प्याज नहीं खाते किन्तु मांस खाते हैं। बम्बई वाले शुष्क पलांडु का सेवन करते किन्तु हरा प्याज नहीं खाते। गुजराती हरा खाते, शुष्क नहीं खाते, इसी प्रकार किसी को लहसन से इन्कार और किसी को प्याज से। इस पर भी इन प्रथाओं के होते हुए सखरी निखरी पर वादविवाद होता है और अभी

× वाल्मीकि रामायण में झूठे बेरों का वर्णन नहीं है। केवल फलादि का वर्णन है। राम भक्तों ने ही झूठे बेरों की कल्पना की है। (अनुवादक)

✓ कृष्ण कुब्जा विलास पुराणों की उपज है। महाभारत में कुब्जा का नाम तक नहीं है। (अनुवादक)

तक कोई मूर्ख हिन्दू कोई पुत्र के हाथ की नहीं खाता और कोई पिता के हाथ की। और पिता को उत्तर देता है कि हम तो तुम्हारे से उत्पन्न हुए, ज्ञात नहीं तुम किस से हुए ? अतः हम तुम्हारे हाथ की नहीं खाते। स्यात् कायस्थों की शराब नाब के निर्माता गौड होंगे अथवा गौमती चक्र के बनाने वाले दाक्षिणात्य ब्राह्मण होंगे ? शोक ! मूर्खता और अविद्या का पारावार नहीं कि इन सब बातों के होते हुए भी और इन सब प्रथाओं के प्रचलित रहने पर भी एक धर्म रक्षक, भारत के महान् उपदेशक विश्व के मार्ग प्रदर्शक जिसने संसार को वैदिक सन्मार्ग पर चलाया उन पर दोषारोपण किया जाता है और दोष लगाने वाले भी कौन ? वही कायस्थ लोग। प्रसिद्ध है कि "नौ सौ चूहे खा के बिल्ली हज्ज को चली" "सदमूष खुर्दा गुर्बह बराये हज्ज खां शुद" (सौ चूहे खा कर बिल्ली हज्ज के लिये चली) "जहे हज्ज और वाह हाजी" भाई साहिब ! स्वामी जी ने तो केवल शास्त्रानुसार भक्ष्याभक्ष्य की विधि बताई है। सखरी निखरी का ऐसा व्यर्थ पामर वर्णन शास्त्रों में नहीं है। शास्त्र में तो स्पष्ट लिखा है :—

आर्यधिष्ठाता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः।

आपस्तम्ब धर्म सूत्र पटल २

कि वेदमत के मानने वाले द्विजों के घर में शूद्र स्त्री पुरुष रसोई बनाना आदि कार्य करें।

मनुस्मृति में जो तीन वर्णों के कर्म लिखे हैं उन में कहीं रसोई बनाने का वर्णन नहीं, हाँ शूद्र के लिये लिखा है कि वह तीनों वर्णों की प्रत्येक प्रकार की सेवा करे, एक स्थान पर तो रसोई बनाने की आज्ञा भी है। यही बात संक्षेपतः स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश के भक्ष्याभक्ष्य विषय में लिखी है।

अब हम आप से पूछते हैं कि आप हमें सखरी निखरी का भेद बताइये और पूर्ण विचार से बताईये। भाई साहिब ! आपने जिस को हिन्दू धर्म माना हुआ है उसका तो कोई ठिकाना नहीं और न कोई उस के नियम हैं। उस की नीचावस्था दयनीय है। उस रोगी हिन्दू धर्म की जीवन समाप्ति जैसी दशा है—

"तन शुदा जुमला दाग दाग, पुम्बा कुजा कुजा निहद"

अर्थात् समस्त शरीर आघातों से भरपूर है तू रूई कहा २ रखेगा ?

अतः अच्छा है कि आप सखरी निखरी की नखरा बाजी को छोड़ कर वैदिक सत्य धर्म को स्वीकार करें और अपने अन्य भाईयों के स्वास्थ्य के शुभेच्छु बनें।

(आक्षेप) सदाव्रत न लगाओ, कितने गृहस्थ लोग सदाव्रत और क्षेत्र करते हैं, वह अनुचित करते हैं।

(खंडन) भाई साहब ! वहां का पूरा लेख यह है कि :—

"कितने गृहस्थ लोग सदाव्रत और क्षेत्र करते हैं, वे अनुचित करते हैं क्योंकि बड़े धूर्त, गांजा और भांग पीने वाले तथा चोर और डाकू वैसे ही लुच्चे सदाव्रत से अन्न लेते और क्षेत्रों में भोजन कर लेते हैं। यह कुकर्म ही करते रहते और दुराचारी हो जाते हैं। बहुत से लोग अपना काम-काज छोड़कर

सदाव्रतों और क्षेत्रों के ऊपर घर के सब कार्य और सेवादि कार्य छोड़कर साधु तथा भिखारी बन जाते हैं। पर अन्न खाते और सोए पड़े रहते हैं। इससे संसार को बड़ी हानि होती है। अतः जो कोई सदाव्रत क्षेत्र करता है। उसमें सज्जन वा सत्पुरुष कोई नहीं जाता। इससे इन गृहस्थों का पुण्य कुछ नहीं होता किन्तु पाप ही होता है। इससे गृहस्थ लोग अन्नादि दान करना चाहें तो पाठशाला खोलें। उसी में सब दान करें अथवा जो श्रेष्ठ धर्मात्मा गृहस्थी और विरक्त होवें उनको अन्नादि देवें और यज्ञ करें तब उनको बड़ा पुण्य होवे पाप कभी न होवे।

अतः आप कुछ इसे दो-तीन बार ध्यान से पढ़ें और देश दुर्दशा पर विचारें। किसी ने सत्य कहा है कि :—

"एक चौथाई भारतवासी भीख मांग कर खाते हैं।"

(आक्षेप) तीर्थों की बुराई की है।

(खंडन) स्वामी जी ने तीर्थों की बुराई नहीं की है किन्तु उनकी वास्तविकता बताई है और स्पष्ट लिखा है कि जल स्थल तीर्थ कभी नहीं हो सकते। जल स्थल तारक नहीं किन्तु डुबा कर मारते हैं। तरणि (नौका) आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे समुद्रादि को तरते हैं। सत्यार्थ-प्रकाश पृ० ३२५

आप संस्कृत नहीं जानते अतः आपको ज्ञात नहीं कि शास्त्रों में किनको तीर्थ कहा है। ब्रह्मचर्य सेवन, विद्याध्ययन तीर्थ हैं। जिनको आप लोगों ने तीर्थ माना हुआ है उनका वर्णन कदापि किसी सच्छास्त्र में नहीं है। शंकर मतानुसार संन्यासियों के दश नामों में से एक तीर्थ भी हैं और सच्छास्त्रों के विपरीत वाममार्गी लोग मद्य को तीर्थ कहते हैं। गंगादि को तीर्थ मानना और उनके स्नान से मुक्ति जानना न केवल वेदशास्त्र के विरुद्ध किन्तु योगाभ्यास के विरुद्ध भी है और सबसे बढ़कर ज्ञान और बुद्धि के विपरीत भी है क्योंकि साधारण रोग तो इनसे दूर नहीं हो सकते पुनः मुक्ति प्राप्ति कैसे संभव है ? महाभारत में लिखा है कि हे युधिष्ठिर ! संयम पुण्य तीर्थ, सत्य जल, शील संतोष तट और दयारूपी जिसमें लहरें हैं उस आत्म तीर्थ में तू स्नान कर क्योंकि जल से अन्तरात्मा शुद्ध नहीं हो सकता। यदि अब भी विश्वास न हो तो हरिद्वार, कनखल और ज्वालापुर के पंडों, मथुरा के चोबों और काशी के उद्दंडों की अवस्था स्वयं जाकर देखो और काशी महात्म्य हरिश्चन्द्रकृत का अध्ययन करो। किसी ने सत्य कहा है :—

रांड, सांड, सीढ़ी, संन्यासी, इनसे बचे तो परसे काशी।

कबीर जी का वचन भी है कि :—

बहुतीरथ हम फिर-फिर आये, देखा देखी जा-जा नहाये।
चलते-चलते कमर पीड़ानी, बात न पूछी पत्थर पानी।

(आक्षेप) स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण पृ० १२३ में लिखा है कि पंचमहायज्ञ करना अविद्वानों अर्थात् मूर्खों का काम है।

(खंडन) वहां का मूल पाठ यह है :—"पांच यज्ञ अपने सामर्थ्य के अनुकूल यथाशक्ति करे, इन्हें कभी न छोड़े किन्तु यह कार्य योग से नीचे हैं। पूर्णज्ञान के हो जाने पर योगाभ्यास करे, इनको न करे क्योंकि यह सब पूर्णज्ञान से नीचे प्रारम्भ करने वालों के लिये हैं और जो ज्ञानी हैं यथार्थ पदार्थ विद्या और परमेश्वर को जानते हैं वह योगाभ्यास करें। सत्यशास्त्रों को विचारें, ब्रह्मविद्या को प्राप्त करके उपदेश भी करें। इसमें मनुभगवान् का प्रमाण है इत्यादि दैनिक महायज्ञ हैं अर्थात् जितने ज्ञानी हैं वह पांच महायज्ञों को ज्ञान क्रिया से ही करते हैं. बाह्य चेष्टा से नहीं क्योंकि वह यज्ञशास्त्र के तत्त्वों को जानते हैं। ज्ञान और योगाभ्यास से विषयों को इन्द्रियों को होम कर दे। इन्द्रियों को मन में, मन को आत्मा में और आत्मा को परमात्मा में युक्त करने को योग कहते हैं। उनकी बाह्य चेष्टा आवश्यक नहीं।"

अब बताइये आपने कितना सत्य से पराङ् मुख होकर यह व्यर्थ अपलाप किया। बताइये आपके उस आक्षेप और आपको दुर्भावना का इससे क्या सम्बन्ध है ?

नियोग सम्बन्धी आक्षेप

पृष्ठ २१ से २४ तक आपने अपने गर्व में चूर्ण होकर बताया है कि यह व्यभिचार है जैसा कि प्राय: धर्मसभा के लोग आक्षेप किया करते हैं।

(खंडन) महाशय! आप स्त्रियों के पुनर्विवाह को अपनी विशाल बुद्धि से व्यभिचारादि शब्दों से स्मरण करते हैं किन्तु जो पुरुष होकर चार-चार तथा एक-एक सौ और १६१०८ स्त्रियों को उचित मानते हैं उनको आप व्यभिचार नहीं मानते जबकि यह दोष बड़े-बड़े देवताओं पर पुराणों ने लगाये हैं। वाममार्गी लोग दुराचार न करने वाले को कंटक कहते हैं और माता भगिनी तक से दुराचार करने को पाप नहीं मानते। ऐसा ही चोलीमार्ग और बीजमार्ग है। आपके हिन्दू भाई प्रसन्नतापूर्वक इन मतों को स्वीकार करते और महाविद्याओं का जाप करते रहते हैं। मोहिनी अवतार और आपके शिव नारायण की कथा तो आपकी मनमानी है। भला आप उससे कब इन्कार कर सकते हैं! शिव जिसे लोग नारायण भी मानते हैं उसका ऋषि पत्नियों से व्यभिचार आपने शिवपुराण हिन्दी कविता शंकरदयाल कृत अध्याय ४१ नहीं पढ़ा? शंखचूड और वृन्दा जलंधर तथा तुलसी महाराणी की कथा, विष्णु को दुराचार के कारण शाप मिलना और शालिग्राम बन जाना आपने देवी भागवत और कार्तिक महात्म्य काहे को पढ़ा होगा? कृष्ण का गोपियों के संग व्यभिचार क्या भागवत में विद्यमान नहीं? और नग्न देखने की कथा विद्यमान है? वह शिव और नारायण जिनका आप अपने को भक्त मान रहे हैं उनकी ऐसी अवस्था है। इसके पश्चात् कुछ गहन अध्ययन कीजिये और श्लोक २३ में ब्रह्मा का स्वपुत्री से व्यभिचार पढ़िये। हमें ज्ञात नहीं कि आप इन्हें महान् मानते हैं अथवा नहीं और इस बात को व्यभिचार भी जानते हैं अथवा नहीं? और शिव पुराण हिन्दी कविता का १८ वां अध्याय भी दृष्टि से ओझल न करना और उसके साथ योगवसिष्ठ वैराग्य प्रकरण सर्ग लोक ५७ से ६६ तक भी हमारी प्रार्थना पर पढ़ने की कृपा करें। जिससे आपको ज्ञात हो कि रामचन्द्र किन-किन पापों के शाप से उत्पन्न हुए थे। देखो योग वसिष्ठ संस्कृत संवत् १६३६ का संस्करण।

शोक! लोग अपनी आंख के शहतीर को निकालने का यत्न नहीं करते और नियोग जैसे पवित्र

सिद्धान्त पर आक्षेप करते हैं। नियोग पर हम विस्तार से पुस्तक लिख चुके हैं और ऐसी अन्य दो तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसी प्रकार विवाह के स्वरूप पर भी बहुत कुछ लिखा जा चुका है अतः ऐसे आक्षेप सर्वथा व्यर्थ हैं इन पर ध्यान देना उचित नहीं।

३० से ३३ पृष्ठ के आक्षेपों का निराकरण

(आक्षेप १) सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ में ही अलंकार की व्याख्या करके स्वामी जी ने लिखा है कि ऐसा ही वेदादि सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान है, चाहे किसी वेद में देख लो। इस प्रकार की व्याख्या कहीं भी नहीं लिखी।

(उत्तर) शोक कि आप पक्षपात के आधीन होकर सत्यासत्य को एक ही प्रकार का समझ रहे हैं। स्वयं सत्यार्थप्रकाश में सारे प्रमाण वेदादि सत्य शास्त्रों के उद्धृत हैं (देखो ७ से १९ तक) विशेषतः यजुर्वेद अध्याय ४० मंत्र १७ तथायोग शास्त्र पाद १ और मांडूक्योपनिषद् सम्पूर्ण।

(आक्षेप २) "गायत्री मंत्र चारों वेदों में है" ऐसा स्वामी जी ने पंच महा यज्ञविधि पृ० २६ पर लिखा है किन्तु हमने कितने पंडितों से दिखवाया उनके अथर्ववेद में कहीं भी नहीं मिला।

(उत्तर) निस्सन्देह यह मंत्र चारों वेदों में अथवा उनके मानने वाले ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी और अथर्ववेदी ब्राह्मणों की संध्या में समानरूपेण है।

यजु० ३६।३, ऋ० ३। ६२।१०, साम प्र० ६ अनु० ३ अ० १३ खं० ४ मंत्र १० +तथा इसी के भाष्य में सायण ने ऐसा ही लिखा है कि यह मंत्र अथर्व में भी ऐसा ही है जैसाकि उनका लेख इस प्रकार है कि :—

गयशब्दस्यान्नपरश्चैवमाथर्वणिक छन्दसि।

(देखो जिल्द ४ पृ० ५३८ सन् १८७७ कलकत्ता एशियाटक सोसायटी)

(आक्षेप ३) प्रथम सत्यार्थप्रकाश के पृ० १४७ पर लिखा है कि "यद्वै किंचिद् मनुरवद् तद् भेषजं ....।

उननिषदें छान मारो किसी में नहीं मिलेगा।

(उत्तर) वास्तव में यह छान्दोग्य का वचन है। छान्दोग्य के दो भाग हैं, ब्राह्मण और उपनिषद्, सम्पूर्ण को छान्दोग्य ब्राह्मण ही कहते हैं। सर्वतः प्रथम कुल्लूक भट्ट ने इसका प्रमाण दिया है पश्चात् मनुस्मृति के अन्य टीकाकारों ने लिखा। मुंशी इन्द्रमणि जी ने भी "सौलते हिन्द" में यही प्रमाण दिया है और राजा शिवप्रसाद ने "मानव धर्म सार" में भी इसका प्रमाण दिया है पृ० १, मनु में लिखा है कि जो कुछ वेद में लिखा है उसे जीव के लिये औषधि समझना। आगे यही प्रतीक लिखी है देखो १८८१ ईस्वी का संस्करण। इसकी शुद्धि पर पांच प्रसिद्ध पंडितों के हस्ताक्षर हैं।

+स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयंतां पावमानीद्विजानाम्। अथर्व १९-७१-१ में गायत्री महात्म्य वर्णित है। इस मंत्र का देवता भी गायत्री है। अतः ऋषि दयानन्द ने पंचमहायज्ञ विधि में गायत्री वर्णन चारों वेदों में समानरूपेण माना है। (अनुवादक)

(आक्षेप ४) सत्यार्थप्रकाश पृ० १३५ में यह आधा श्लोक—

विविधानि चरत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ।

यह मनु के प्रमाण से लिखा है और इसका भाषार्थ यह किया है कि नाना प्रकार के रत्न स्वर्णादि धन संन्यासियों को देवें ।

यह श्लोक भी स्वामी जी की मनुस्मृति में ही था और किसी में न मिलेगा । इस पर यदि कोई आक्षेप करे कि स्वामी जी ने लोगों को लूटने के लिये अपने मन से यह श्लोक घड़ लिया था, यह सर्वथा मिथ्या है क्योंकि उन्हें एक दमड़ी का भी लोभ न था, केवल देशोन्नति का विचार था; यदि लोभ ही होता तो अपने घर की महाजनी क्यों छोड़ते ? पुनः घोषपूर्वक कहते थे कि हमें धनादि कुछ नहीं चाहिये वह कुछ छाती पर धर कर भी साथ नहीं ले गये ।

(उत्तर) भाषा विज्ञान और पुरातन वस्तु विश्लेषण से अनभिज्ञ लोग प्रायः ऐसे ही व्यर्थ आक्षेप किया करते हैं । वेदों को छोड़कर शेष सभी प्राचीन ग्रन्थों में प्रक्षेप हुआ है । वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण कंठस्थ किया जाता था और इनकी रक्षा के कठोरनियम बनाए गये थे और इनके एक-अक्षर की रक्षा करना धर्म समझा जाता था । किन्तु लेखकों के आलस्य और प्रमाद तथा कवियों के अंधालंकारों के कारण अथवा विस्मृति दोष से यह श्लोक किसका और कहां का है ? ऐसी पुस्तकों में बहुत सा प्रक्षेप हो रहा है ।

महाभारत और शाहनामा फ़ारसी जैसी बड़ी पुस्तकों में सबसे अधिक प्रक्षेप हुए हैं और सैंकड़ों सहस्रों श्लोक इन क्षेपकों की कृपा से बढ़ा दिये गये हैं । (देखो महाभारत और शाहनामा एशियाटक सोसायटी कलकत्ता)

और ऐसा ही निरुक्त में भी पाठभेद है । मनुस्मृति के बहुत बड़ी पुस्तक न होने के कारण प्रक्षेप की कारिस्तानी भी बहुत नहीं हुई । आर्यसमाज के विद्वानों तथा अन्य विद्वानों की भी यही सम्मति है । देखो मनु स्मृति छः टीका वाली बम्बई संस्करण ।

राव विश्वनाथ नारायण मांडलिक सी० एस० आई० प्राड्विवाक बम्बई ने जो मनुस्मृति की व्याख्या की है उसमें भी माना है कि बहुत स्थानों पर पाठभेद और प्रक्षेप हो गया है । यहां तक कि श्लोकों के श्लोक मिलाये गये हैं । योरुप के अन्वेषकों ने भी ऐसा ही निश्चय किया है । देखो प्रोफेसर जाली की स्मृति जिस में सैंकड़ों श्लोकों का पाठ भेद और मूल भेद बताया है और प्रायः ऐसे श्लोक भी लिखे हैं जो सर्वथा अब मनु स्मृति में नहीं हैं ।+

इस श्लोक की भी यही अवस्था है । हमारे पास एक बहुत प्राचीन मनुस्मृति हस्तलिखित है, उसमें न तो वह श्लोक है जो वर्तमान मनुस्मृति में हैं और वह भी नहीं जो स्वामी जी ने लिखा अर्थात् दोनों नहीं । प्रोफेसर जाली साहब की मनुस्मृति में इस ११-६ का भी पाठ भेद है जैसाकि अन्यत्र सहस्रों में है । बोहलर साहब ने भी इस श्लोक पर संदेह व्यक्त किया है । श्लोक इस प्रकार से है कि —

+ मनुस्मृति कुल्लूक भट्ट प्रणीत मन्वर्थ मुक्तावली में क्षेपक तथा परिशिष्ट लोकों की सूची दी गई है । क्षेपकों को यथास्थान कोष्ठान्तर्गत लिखा गया है तथा परिशिष्ट लोकों की सूची ग्रन्थ के अन्त में प्रकाशित की गयी है । यह ३५५ श्लोक वर्तमान मनुस्मृति में नहीं हैं । (अनुवादक)

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्।
वेदवित्सु च विप्रेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते॥

इसका पाठ भेद कुछ ग्रन्थों में इस प्रकार से हैं :—

धनानितु यथाशक्ति विप्रेषूपपादयेत्।
वेदवित्सुविविक्तेषु प्रेत्यस्वर्गं समश्नुते॥

चौथी प्रतीक दोनों में एक है। दूसरी प्रतीक× में विप्र और विविक्त का पाठ भेद है। तीसरी प्रतीक में भी विप्रेषु और विविक्तेषु का पाठभेद है। प्रथम प्रतीक में रत्नानि और धनानि का शब्द भेद है अर्थ भेद नहीं।

प्रथम प्रतीक का अर्थ है कि अनेक प्रकार के रत्न संन्यासी को देवे जो वेद का विद्वान् हो। ऐसा दान देने वाला मरने के अनन्तर सुख (स्वर्ग) को प्राप्त होता है।

दूसरा पाठ भेद का यह अर्थ है कि यथाशक्ति धन विद्वान् को देवे। कैसा विद्वान् हो जो संन्यासी और वेद का ज्ञाता हो। ऐसा करने से मरकर सुख या स्वर्ग को प्राप्त होता है।

बताईये! अर्थ भेद कहां है? यहां यह बता देना भी आवश्यक है कि विविक्त का अनुवाद कुछ संस्कृत का ज्ञान न रखने वालों ने गृहस्थी ऐसा किया है जो सभी कोषों के विरुद्ध है। विविक्त का अर्थ "पृथक् किया हुआ" है। गुहा में रहने वाला, अकेला, सांसारिक विषयों से पृथक् अर्थात् विरक्त अथवा जीवन मुक्त। (देखो संस्कृत इंगलिश कोष शिवराम आप्टे एम. ए. प्रिंसीपल व प्रोफेसर संस्कृत पूना कालिज १८९१ ई०)

तथा शब्दार्थ चिन्तामणि कोष में भी ऐसा ही लिखा है। (देखो पृ० ३४७)

शंकराचार्य, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि महात्मा परोपकारार्थ धन प्राप्त करके परहितार्थ धन व्यय करते थे और ऐसा धन लेना न तो बुरा है और न पाप है किन्तु लोगों को दान करने की शुद्ध पद्धति सिखाना है। इसी प्रकार स्वामी जी ने बताया है कि विद्वान् ज्ञानी महात्मा संन्यासियों को दान दो। जिससे वह तुम्हारे उपकार और मंगल कार्य में धन का व्यय करें। कोई २ महात्मा संन्यासी दान ले कर तालाब बनवा देते हैं, यज्ञ कर देते हैं, गो शाला बनवा देते हैं। यह सारे पुण्य हैं और ऐसा दान किसी अवस्था में बुरा नहीं।

देश में वेदभाष्य की आवश्यकता थी, वेद का अनुवाद सर्वथा सनातन ऋषि मुनियों की इच्छानुसार नहीं मिलता था और संस्कृत के समझने वाले लोग भी न्यून थे। ऐसी अवस्था में आवश्यक था कि वेद का अनुवाद सामान्य सरल भाष्य में किया जाता। और साथ ही जब कि लोग वैदिक धर्म को छोड़कर मुसलमान और ईसाई भी बहुत हो रहे थे, केवल इतना ही नहीं किन्तु जो वेदों के नाम मात्र नाम

+मनुस्मृति कुल्लूक भट्ट में यह श्लोक निम्न प्रकार से लिखा है :—

धनानितु यथा शक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्।
वेदवित्सुविविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते॥ मनु० ११-६ (अनुवादक)

लेवा सहायक कहलाते थे वह वाम मार्ग, चोली मार्ग, मूर्ति पूजा, पीपल पूजा, नदी पूजा, बीज मार्ग, कबर पूजा, तग्र्रज़िया पूजा, सर्वं खल्विदं ब्रह्म आदि निषिद्ध मार्ग पर फंसे हुए थे। अतः ऐसे समय में इस बात की बहुत ही आवश्यकता थी। इसी कारण से इस आवश्यकता को दृष्टिगत करके स्वामी जी ने वैदिक यन्त्रालय के लिये धन एकत्र किया और वह धन एकत्र करके एक परोपकारिणी सभा को दे दिया। जो अब तक दो लाख के लगभग इस सभा के पास विद्यमान है।

जिन लोगों ने दान दिया था और वापिस लेना चाहा, उन सबको लौटा दिया तथा जिन्होंने न लेने की इच्छा की उनकी इच्छानुसार वह धर्मार्थ रहा।

बताईये ! इसमें स्वामी जी का कौन सा लोभ और अभिप्राय था। अतः यह समस्त आक्षेप, गालियां और बहाने आपकी बुद्धिमत्ता से प्रायः दूर हैं।

(आक्षेप ५) सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३३४ में लिखा है कि अक्रूर जी कंस के भेजने से वायु के वेग के समान दौड़ने वाले घोड़ों के रथ पर बैठकर सूर्योदय से चले और चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय पहुंचे। पोप लोग कहते हैं कि भागवत में ऐसा कहीं नहीं लिखा। इससे सिद्ध है कि उनकी भागवतें अपूर्ण हैं।

(उत्तर) भागवत में यह लिखा हुआ है। जो इन्कार करता है चाहे पोप हो अथवा आप हूं वह सत्यवादी मनुष्य नहीं है। देखो भागवत १०।३८।२४ से १०।३९।३८ तक। इतने शब्द वहां विद्यमान हैं :—

रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ भागवत १०।३८।२४

भगवानपि संप्राप्तो रामा क्रूरयुतो नृप।
रथेन वायुवेगेन कालिन्दोमविनाशिनीम् ॥ भागवत १०।३९।३८

आप संस्कृत नहीं जानते अतः हम आपको उर्दू भागवत से ही बताते हैं।

सहरगाह कारवाने अखतरो माह।
हुआ लेकर खां जब ख़ीलो ख़रगाह ॥
हुआ बेदार मर्द पाक अक्रूर।
हज़ूर कंस आया शादो मसरूर ॥

हुआ रुख़सत चढ़ा रथ पर शिताबी।
चला शादां बराहे कामयाबी ॥
ग़रज़ इस ध्यान में अक्रूर तनहा।
बवक्त शाम वृन्दावन में पहुंचा ॥

(भागवत उर्दू जगन्नाथ खुशतर कृत अध्याय ३९ पृ० ५३ नवल किशोर १८६७ ईस्वी)

और इसके साथ देखो भाषा की बड़ी भागवत नवल किशोर छापा। वहां भी विस्तार से है।

अतः स्वामी जी का आक्षेप सर्वथा यथार्थ है। जब तक भागवत संसार में विद्यमान है भागवत मानने वालों का इस आक्षेप से छुटकारा नहीं और ऐसी ऐसी गप्पें होने के कारण वह व्यास कृत नहीं किन्तु बोप देव वाम मार्गी की है।

(आक्षेप ६) स्वामी जी ने भागवत प्रमाण से प्रह्लाद की कथा में लिखा है कि लोहे के तपे हुए स्तंभ पर चीटियां चलती हुई दृष्टिगत हुईं। तब प्रह्लाद का साहस बंधा। किसी के पास स्यात् ऐसी भागवत मिले जिसमें यह कथा निकले।

(उत्तर) स्वामी जी ने न तो वहां भागवत नाम लिखा है और न उसका कोई प्रमाण दिया है। केवल प्रह्लाद की कथा तथा नृसिंह अवतार की कथा जिन २ पुस्तकों में है। उन पर उन्होंने आक्षेप किया है और जहां तक हमने विचार किया है, यह आक्षेप जो स्वामी जी का सत्यार्थप्रकाश पृ० ३३५ पर है, बहुत तर्क पूर्ण है किन्तु हाँ यह चीटियों की कथा भी उसी प्रसंग से सम्बन्ध रखती है। कोई रासलीला देखने वाला मनुष्य जिसने कभी नृसिंह अवतार लीला देखी है, इससे इन्कार नहीं कर सकता।

भागवत टीकाकार प्रसिद्ध कृष्ण भक्त श्रीधर ने भी इसे स्वीकार किया है। भागवत के फ़ारसी अनुवाद में फ़ैज़ो ने और उसके संक्षेप में सुलतान अली शीराज़ी ने लिखा है कि :—

हिरण्यकश्यप ख़शमगीन शुदा शमशीर बरकशीद व दरम्यान स्तून ज़द व पारह गर दानीद खुर्द। मोरचेह स्याह आमद ज़िकनान अज़ म्यान स्तून बर आमद।×

(देखो भागवत फ़ारसी पृ० १० प्रकाशित १८७० ईस्वी)

इस स्थान पर हम उचित समझते है कि पुराणों के सम्बन्ध में समस्त प्रमाणों को एक ही बार आप दृष्टि कर लें, तो आप के आक्षेपों की भूल आपको ज्ञात हो जाए।

(आक्षेप ७) स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश २८७-२९० में लिखा है कि दो जैन ऊपर से कथन मात्र वेद मत और भीतर से कट्टर जैन अर्थात् कपटमुनि थे। शंकराचार्य उन पर अति प्रसन्न थे उन दोनों ने अवसर पाकर शंकराचार्य को ऐसी वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मंद हो गई, पश्चात् शरीर में फोड़े फुंसी होकर छे मास के अन्दर शरीर छूट गया।

(उत्तर) स्वामी जी ने जो कुछ लिखा है वह सर्वथा सत्य और आशिरः पाद घटनानुसार है और ऐसा ही शंकर दिग्विजय में लिखा है। उनकी ३० वा ३२ वर्षीय आयु स्वयं इस बात की गवाह है कि उनकी मृत्यु असाधारण हुई और जितने सुधारक इस छोटी सी आयु में मरे हैं उनकी मृत्यु ऐसे ही कारणों से हुई (देखो मसीह जीवन)

अब हम आपको बताते हैं कि शंकरदिग्विजय में लिखा है कि "अभिनव गुप्त नामी एक मंत्र शास्त्री ने छल से युक्त होकर शंकराचार्य के मारने के लिए एक अभिचार कर्म किया, जिससे उनको

+हिरण्यकश्यप ने क्रोधित होकर तलवार निकाली और स्तंभ के मध्य में मारी और खंडित कर दिया। एक काली चींटी स्तंभ के मध्य से निकली। (अनुवादक)

गंदर रोग हो गया। इससे वह कुछ समय तक रुग्ण रहे। अन्ततः उन्होंने बहुत दुःखी होकर महादेव की प्रार्थना की और महादेव ने अश्विनो कुमार देवता वैद्यों को भेजा जिन्होंने आकर उसे स्वस्थ किया तब वह शिव लोक को चले गये।"

(संक्षेपतः देखो माधवी शंकर दिग्विजय सर्ग १६)

यह ग्रन्थ बम्बई में प्रकाशित हुआ है और इस पर गुजराती टोका भो है इसी का अनुवाद हिन्दी भाष्य की कविता में होकर नवल किशोर प्रैस में भी संवत् १९३५ में प्रकाशित हुआ है। उसके पृष्ठ ३३० से ३३६ तक यही वृत्तान्त विस्तार सहित लिखा है।

इस वर्णन से प्रगट है कि महादेव की प्रार्थना और अश्विनी कुमार का आना तो सारे कपोल कल्पित प्रशंसात्मक शब्द हैं। और गाय पर बैठ कर शिवलोक जाना भी वैसा ही है। किन्तु अभिनव गुप्त आदि के अभिचार कर्म अर्थात् किसी वस्तु में विष युक्त वस्तु अथवा दुःखदायक औषधि के खिला देने से वह लगभग छे मास रुग्ण रहकर मर गये अथवा पौराणिक वर्णन शैली के अनुसार वह शिवलोक को गये। यही अभिप्राय स्वामी जी का उस लेख से है।

(आक्षेप ८) सत्यार्थप्रकाश ३३८-३४३ में सिद्धान्त शिरोमणि का जो प्रमाण दिया है। असंभव है किसी और को इसका ज्ञान नहीं।

(उत्तर) यह लेख सूर्य ग्रहण और चंद्रग्रहण के सम्बन्ध में है। स्वामी जी ने बताया है कि "इस प्रकार जब सूर्य और भूमि के मध्य में चंद्रमा आता है तब सूर्य ग्रहण और जब सूर्य और चंद्र के मध्य में पृथिवी आती है तब चन्द्रग्रहण होता है।"

नवीन पुराण वादियों के राहु केतु की कथा का खंडन किया है। अतः जो कुछ स्वामी जी ने लिखा है। वैसा ही सूर्य सिद्धान्त शिरोमणि में है और जो स्वामी जी ने प्रतीक लिखी है वह ग्रह लाघव का प्रमाण है। (देखो अध्याय ४ श्लोक ४) परन्तु उसने भी उन्हीं के प्रमाण से लिखा है।

(आक्षेप ९) सत्यार्थप्रकाश १९७-१९९ में शारीरिक भाष्य का प्रमाण दिया है। यह भी कहीं नहीं मिलता।

(उत्तर) यह स्वामी जी ने प्रमाण नहीं दिया नवीन वेदान्तियों ने दिया है और शारीरिक भाष्य में यह कारिका भी है। इससे भी तो कोई बुद्धिमान् इनकार नही कर सकता। और वेदान्तियों की तो यह प्रसिद्ध ढाल है। स्वयं हम से कई बार उन्होंने शास्त्रार्थ में यह श्लोक उपस्थित किये। आप जान बूझ कर धोखा न दें।

(आक्षेप १०, ११) १८७-१८९ तथा ५८९-६०० लेख के प्रमाणित वचनों पर है।

(उत्तर) यह दोनों प्रमाण यदि किसी ग्रन्थ के न भी हूं तो भी बहुत उत्तम हैं एक तो योग समधी और परमानंद के सम्बन्ध में और दूसरा धर्म की महिमा पर है। स्वामी जी ने इन्हें उपनिषदों के प्रमाण से लिखा है किन्तु नाम का उल्लेख नहीं है और हमें अभी तक मिला भो नहीं, संभवतः इन दस उपनिषदों में नहीं है तो क्या आपत्ति है ? हम आर्यसमाज के नियम संख्या ४ के अनुसार उन्हें स्वीकार करते हैं और :—

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि०।। य०

के अनुसार हम उन को यथार्थ समझते हैं। आप बताइये इन में कौन सी भूल है? जिससे हम स्वीकार करें। अथवा इन में कौन सी बात वेदविरुद्ध है जिस पर आप ने आक्षेप किया है। किसी ने सत्य कहा है कि—

स्वार्थी दोषं न पश्यति।

—०—

श्रुतिस्मृति संबंधी आक्षेप

अब हम उन आक्षेपों का उत्तर निवेदन करते हैं जो आपने इस विचार सें किये हैं जिस से लोगों को स्वामी जी से संदिग्ध करें अर्थात् यह कि स्वामी जी ने श्रुति और स्मृति में सुधार किया है? जबकि यह सर्वथा मिथ्या है। (पृष्ट ३३ से ४१ तक)

(आक्षेप १) दूसरे और तीसरे संस्करण के सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८८ में दिये श्रुति प्रमाण में वेद्यं के स्थान पर विश्वं और महान्तं के स्थान पर पुराणं बनाया है। तथा ऐसा ही मनुस्मृति २।१०३ में शूद्रवत् के स्थान पर साधू भी बना दिया है।

(उत्तर) यह श्वेताश्वतरोपनिषत् का वचन है। वेद मंत्र नहीं और यह उस का पाठ भेद है। स्वामी जी का परिवर्तन नहीं। आप भिन्न २ लेखबद्ध और छपे हुए का अध्ययन कीजिये। आप का संदेह दूर हो जायगा। यह आक्षेप आशिरःपाद सत्य से दूर है।

(आक्षेप २) इसी प्रकार मनुस्मृति अध्याय १७६ वें चतुर्थ श्लोक को पृष्ठ ११० पर सर्वथा परिर्वातित कर दिया है और मुंडकोपनिषद् की श्रुति पृष्ठ १५९ पर ठीक लिखी है और पृष्ट २४० पर परिवर्तन कर दिया है। देखो सत्यार्थप्रकाश तीसरा संस्करण।

(खंडन) यह आप की भूल है। उस पुस्तक का शुद्धि अशुद्धि पृष्ठ दूसरे संस्करण के अन्तिम पृष्ठ पर देखिये। ऐसे ही कई बार आपने धोखा देना चाहा अथवा धोखा खाया। और पृष्ठ १५६ भी आप ने ठीक नहीं लिखा। वास्तव में पृष्ठ १२५ है। इन दोनों के लिए तृतीय संस्करण में शुद्धि अशुद्धि पत्र विद्यमान है। कुछ आंखें खोल कर अध्ययन कीजिये और प्रथम के पृष्ठ १४५ पर भी ऐसा ही लिखा है। अतः आप का यह आक्षेप सर्वथा निराधार है।

(आक्षेप ३) सत्यार्थप्रकाश द्वितीय संस्करण के पृष्ठ ४३ पर लिखा है जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र होवे तो उन को मंत्र संहिता छोड़ कर सब शास्त्र पढ़ावे और पृष्ठ ७४ पर उस के विरुद्ध वेद के अनुसार सब को वेद का अधिकार लिखा है। संभवतः इसलिए कि उन के पन्थ में शूद्रों का बाहुल्य है।

(उत्तर) यहां भी आप की समझ की भूल है। वह स्वामी जी की सम्मति नहीं किन्तु सुश्रुत कारने अपनी भाषा में कुछ लोगों की सम्मति लिखी है कि ऐसा मत भी अनेक आचार्यों का है और जो स्वामी जी ने पृ० ७४ पर वेद मंत्र लिखा है वह तो स्वयं ही सैंकड़ों ऋषियों से बढ़ कर आज्ञा है और ऐसा ही सहस्रों ऋषियों का मत है कि सब को वेद पढ़ाना चाहिये और सहस्रोंऋषि-वाल्मीकि, वासिष्ठ, गौतम, व्यास, विश्वामित्रादि शूद्र कुल मे उत्पन्न हो कर ब्राह्मण बन गये।

आर्यसमाज में शूद्रों का बाहुल्य नहीं है। किन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों का बाहुल्य है। जब हम वर्ण व्यवस्था कर्मानुसार मानते हैं तो हम इस को यदि ऐसा हो भी तो भी आपत्ति जनक नहीं समझते किन्तु शूद्रों का बाहुल्य वाममार्ग, वैरागियों, कबीर पन्थियों, दादू पन्थियों राम स्नेहियों, चक्रांकरों, निर्मलों और उदासियों में है।

एक हमारा प्रश्न आप पर भी है कि धर्म वाले कायस्थों को किस वर्ण में समझते हैं व्यवस्था लेकर तो बताईये क्योंकि इन में से सहस्रों मद्य मांस के सेवन करने वाले और सैंकड़ों ऐसे हैं जिन्होंने मुसलमान वेश्याएं घर में डाली हुई हैं।

(आक्षेप ४) आर्योद्देश्य रत्नमाला के ११वें पृष्ठ पर आर्य की व्याख्या की है कि जो आर्यावर्त में सब दिन से रहने वाले हैं। पुनः सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३३ पर लिखा है कि मनुष्यों की आदि सृष्टि तिब्बत में हुई पुनः आर्य लोग आर्यावर्त की भूमि को उत्तम समझ यहां पर आकर निवास करने लगे।

(खंडन) आप का सारा अन्वेषण अपूर्ण, मिथ्या और संदेह वाहक है। वस्तुस्थिति यह है कि स्वामी जी ने इस विषय में जो कुछ लिखा है वह सब सच्छास्त्रों के अनुसार है। जिसे स्वामी जी ने आर्यों का आदि उत्पत्ति स्थान माना है वह हिमालय के उत्तरीय भाग में है और वह प्राचीन मनु के काल में जिस का नाम भी मनु था, आर्यावर्त के साथ शामिल था जैसाकि भूगोल अस्थामलक में भी लिखा है "सीमा इस देश की भिन्न २ समय में भिन्न २ प्रकार से रही, कभी लोगों ने ब्रह्मा, स्याम, मलाया और कोचीन को भी इस में गिना और कभी काबुल कन्धार और तिब्बत को इस में मिलाया" पृष्ठ २० सन् १८७६

अमरीका के प्रसिद्ध डाक्टर जैक्सन डैविस साहिब ने भी ऐसा ही लिखा है कि आदि सृष्टि मनुष्यों की तिब्बत अर्थात् हिमालय के उत्तरी दामन में हुई (हार मोनिया जिल्द ५)

और यह मनु के अनुसार भी है देखो—मनु २।१७ जिस का संक्षिप्त अभिप्राय यह है कि ब्रह्मपुत्र नदी अर्थात् सरस्वती नदी से लेकर दृषद्वती अर्थात् काले पत्थरों वाली सिन्धु नदी तक जो देश है, वह ब्रह्मवर्त कहलाता है। अब विचार करो कि वह देश कौन सा है? आप अंग्रेजी जानते हैं। एटलस खोलकर आँखों के सम्मुख रखो और देखो कि ब्रह्मपुत्र और सिन्धु के मध्य में छोटा तिब्बत आ जाता है या नहीं? और यह भी देखो कि बड़े तिब्बत का बहुत सा भाग भी उस में मिल गया है। यदि इंगलिश ऐटलस पास न हो तो उर्दू देखिये जो १८९० ईस्वी में मुंशी गुलाब सिंह के प्रैस में प्रकाशित हुआ है। यदि यह सत्य है कि इन दो नदियों के मध्य छोटा तिब्बत और कुछ भाग बड़े तिब्बत का आ जाता है तो कदापि स्वामी जी की बात में विरोध नहीं है। ऐसा ही है और अवश्य है। और यही विदेशी स्कालरों की सम्मति है। निस्सन्देह स्वामी जी उन्हीं ऋषियों की सन्तान से थे जो आदि सृष्टि में त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बत में (जिस का दूसरा नाम स्वर्ग अर्थात् सुख भूमि भी है) उत्पन्न हुए और इन्हीं महा-पुरुषों की ओर मनु जी ने २/२० में इङ्गित किया है। महाभाष्यादि की दृष्टि से उस का नाम कुरुक्षेत्र भी है और उस का पता बताया है "उत्तर कुरवः" अर्थात् कुरुक्षेत्र (कुरुदेश) उत्तर में है। यदि हम स्वामी जी के अन्वेषण को यथार्थ मानें और वाममार्गी पंडितों के वचन पर विश्वास करें तो यह कुरुक्षेत्र नाम कौरव पांडव युद्ध के पश्चात हुआ, और मनुस्मृति की रचना उसके पश्चात् हुई जबकि यह सर्वथा मिथ्या है क्योंकि इस युद्ध से सैंकड़ों वर्ष पूर्व के ग्रन्थों में कुरु आदि नाम विद्यमान हैं। अतः

स्वामी जी की आज्ञा सर्वथा स्पष्ट है अन्यथा इस के विरुद्ध मानने से समस्त सद्ग्रन्थों से इनकार करना पड़ेगा।

(आक्षेप ५) स्वामी जी ने कहीं लिखा है कि परम पद को प्राप्त हो कर नित्य आनंद में रहते हैं। पुनः कई स्थानों पर मुक्ति से लौट आना भी लिखा है।

(उत्तर) यह आक्षेप कई कारणों से मिथ्या है। प्रथम कारण यह कि शब्दों की भरमार के अतिरिक्त ज्ञान जीवन में इस का कोई प्रमाण नहीं किन्तु समस्त प्रमाण इस के विरुद्ध हैं। कृष्ण महाराज जो योगेश्वर और मुनीश्वर उभययक्ष सम्मत महा पुरुष हैं, वह स्वयं गीता में कहते हैं कि :—

बहूनि में व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।

हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं।

शंकराचार्य जो आप के वचनानुसार शिव स्वरूप थे वह भी मुक्ति से पुनरावृत्त हो कर शरीर धारी हुए।

जय विजय वैकुंठ अर्थात् मोक्षपदवी से पृथक् किये गये और वही रावण कंसादि होते रहे।

ब्रह्मा के व्यास जी अवतार हुए और इसी प्रकार दत्तात्रेय, रामचंद्र तुलसी दास जी अथवा पुराणों के वचनानुसार साक्षात् विष्णु स्वरूप, किन्तु मनुष्य जन्म में अवश्य आए सीता, हनुमान्, लक्ष्मण आदि सब की यही अवस्था है। मानुषी जीव तो एक ओर, स्वयं परमेश्वर को भी पौराणिक लोगों ने वैकुंठ में आराम से न बठने दिया। सूकर, मच्छ, कच्छ, सिंह, घोड़ा, कुत्ता, स्त्री आदि के शरीरों में आना मान लिया और नवीन वेदान्त ने तो संसार को नास्तिक बनाने का मानो ठेका ही ले लिया है। यह जितनी योनियां हैं अथवा जितने जीव हैं, सब ही ब्रह्म हैं। केवल अविद्या के कारण अथवा माया के मोह में ब्रह्म भूल कर शंकराचार्य जी के वचनानुसार जीव कहलाते हैं।

भाई शिव नारायण जी ? आप ध्यान दें, मुक्ति से पुनरावृत्ति का सिद्धान्त कोई नया नहीं है। समस्त महात्माओं ने मुक्तात्माओं के पुनः लौटने का सिद्धान्त स्वीकार किया है।

दूसरा कारण-जिसका आदि है उस का अन्त भी अवश्य है। एक ओर जैसे मोक्ष का आदि है तो कोई कारण नहीं है कि उस का अन्त न हो।

तृतीय कारण-मुक्ति कर्मों का फल है और कर्म सीमित हैं, अतः आवश्यक है कि मुक्ति सीमित हो।

चतुर्थ कारण-कोई वेद मंत्र मुक्ति के सीमा रहित होने पर नहीं है। हां, ऐसे मंत्र अवश्य हैं जिन से पाया जाता है कि मुक्ति सीमित है और परान्त काल के पश्चात् पुनः लौट आना होता है।

क्योंकि मोक्षकाल इतना बड़ा है कि मनुष्यों की गणित विद्या वास्तव में उस की गणना नहीं कर सकती। अतः महात्माओं ने कुछ स्थानों पर उसकी व्याख्या में सदैव का शब्द प्रयुक्त कर दिया है किन्तु सभी स्थानों पर उस का अभिप्राय परान्त काल से है। इसके सम्बन्ध में हम ने "नजात" (मोक्ष) नामो पुस्तक में विस्तार के साथ लिख दिया है।

अतः आप का यह लिखना कि जालंधर में एक मौलवी से शास्त्रार्थ करने पर स्वामी जी ने युक्तियुक्त उत्तर न आने पर नित्य मुक्ति से इनकार कर दिया-यह सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि न तो वहां

पुनर्जन्म और चमत्कारों के अतिरिक्त किसी और मन्तव्य पर शास्त्रार्थ हुआ और न ऐसा विषय उपस्थित हुआ। यहां का सारा शास्त्रार्थ विधर्मियों की ओर से प्रकाशित विद्यमान है। उसमें सर्वथा इस का वर्णन नहीं अतः भाई साहब ? उचित है कि प्रथम तो प्रश्न को मन में तो लो, पुनः मुख से बोलो। कहा है कि :–

न गुफ्तह नदारद कसे बा तो कार।
व लैकिन चूं गुफ्ती दलीलशबियार ॥ ×

शास्त्र के वचनों के अर्थ

(आक्षेप १) सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ८९ पर गीता १८।४३ का यह अर्थ किया है कि जो भागने अथवा शत्रु को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना चाहिये। किन्तु प्रत्यक्षतः गीता के इस श्लोक का विपरीत यह अभिप्राय है कि शत्रु के सामने से भागना क्षत्रियों का धर्म नहीं है।

(आर्य) भाई साहिब ! धोखा न दीजिये। स्वामी जी ने जिस विशेषता से इसका अनुवाद किया है वह युद्ध नियमों के सर्वथा विरुद्ध नहीं किन्तु तदनुसार है। वह लिखते हैं—"सैंकड़ों सहस्रों से भी युद्ध करने में अकेला भय न होना, सदा तेजस्वी अर्थात् दीनता रहित प्रगल्भ दृढ़ रहना, धैर्यवान् होना, राजा और प्रजा सम्बन्धी व्यवहार और सब शास्त्रों में अति चतुर होना, युद्ध में भी दृढ़, निःशंक रह के उससे कभी न हटना न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चित विजय होवे, आप बचे, जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना, दान शीलता रखना, पक्षपात रहित होके सबके साथ यथायोग्य वर्तना, विचार के देना, प्रतिज्ञा पूरी करना, उसको कभी भंग होने न देना। यह ग्यारह क्षत्रिय वर्ण के कर्म और गुण हैं।"

यह भागना जो स्वामी जी ने लिखा है वह भीरुता का भागना नहीं है किन्तु एक मिलट्री शब्द है अर्थात् युद्ध सम्बन्धी परिभाषा है। संसार को समस्त विजय दुन्दुभियों को किसी न किसी अवसर पर इस पर आचरण करना पड़ा बोनापार्ट और सिकन्दर को जीवनी पढ़ो, तैमूर की दैनन्दिनी का अध्ययन करो। यदि स्वामी जी इस विस्तार से न लिखते तो भी कृष्णचन्द्र जी की जीवनी पर कौन हड़ताल लगा सकता है ? कालयमन से भागे पुनः दो बार मथुरा से भागकर द्वारका में जा बसे। स्वयं शिवजी कृष्ण जी के सामने भाग गये। कृष्ण जी का नाम रण छोड़ तो प्रसिद्ध है। अतः आपका यह आक्षेप वास्तव में यदि है तो कृष्ण जी पर है न कि स्वामी जी पर। किन्तु यह आक्षेप नहीं, प्रत्युत युद्ध विद्या की एक पद्धति है अथवा शत्रु की चोट से अपनी सुरक्षा करना है।

(आक्षेप २) मनुस्मृति १०।६५ का अनुवाद अशुद्ध किया है।

(आर्य) यह अनुवाद अशुद्ध नहीं है। आपको पक्षपात ने शुक्र देवता की भान्ति आलोचना के अतिरिक्त न्याय से कार्य करना आपके स्वभाव से रहित कर दिया है। स्वामी जी से बहुत पहिले भी विद्वान् पंडितों ने उसका यही अनुवाद किया है। जैसा कि आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व संवत्

×नहीं बोले तो कोई भी व्यक्ति तुझ से प्रयोजन नहीं रखता किन्तु जब तू बोलने लगा तो युक्ति और तर्क भी साथ ला। (अनुवादक)

१९३० विक्रमी तदनुसार १८७३ ईस्वी में कलकत्ता के एक ब्राह्मण विद्वान् शास्त्री ने भोजन विचार ग्रन्थ लिखा था। उसके पृष्ठ २३ पर इस श्लोक का अर्थ उसी प्रकार किया है—"शूद्र ब्राह्मणता को प्राप्त होता है और ब्राह्मण शूद्रता को, इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य को भी जानो।"

(भोजन विचार पृष्ठ २३ रामायण प्रैस कलकत्ता)

न्याय की बात यह है कि श्लोक का शब्दार्थ यही है और ऐसा ही मनु जी ने लिखा। निरक्षरों से हमें प्रयोजन नहीं और न पक्षपात करने वाले से कोई प्रयोजन है। मनुस्मृति के लेख से अपरिचित लोग बहुत सी लम्बी भाषा इसमें घुसेड़ कर अनुवाद करते हैं जो सिर से पांव तक अशुद्ध है।

इसी के साथ देखो मनु ९।२२-२६ और महाभारत में इसके अतिरिक्त और भी विस्तार से लिखा है। हमने इसी पुस्तक में इसका विस्तृत वर्णन किया है। लाला मुंशीराम प्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपनी पुस्तक वर्णव्यवस्था में और आर्यसमाज मेरठ ने भी इसी नाम की एक पुस्तक में पर्याप्त प्रमाण दे दिये हैं। अल आकिलो तकफ़ी लइशारतो।×

(आक्षेप ३) मनुस्मृति ९।६९ के उत्तरार्द्ध का अर्थ भी अशुद्ध किया है। स्वामी जी इसे पुनर्विवाह पर लगाते हैं। अन्य टीकाकारों ने कुछ और ही समझ रखा है।

(आर्य) वर्तमान धर्म सभा के पंडितों की अवस्था और उनके शिष्यों की मनोवृत्ति अकथनीय है। जितनी जातीय सुधार की बातें और जिस प्रकार के सांसारिक परोपकार के कारण हैं, यह लोग उन सबसे ही रुष्ट रहते हैं। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे विद्वानों और बड़े-बड़े योग्य पंडितों ने पुनर्विवाह को उचित बताया है और स्वामी जी ने भी इसके उचित होने पर व्यवस्था दी है। जातीय सुधार करने वाली सबकी सब सभाएं इसको उचित मानती हैं किन्तु यदि विरोधी हैं तो केवल यही मनमाने पदों से विभूषित महामहोपदेशक महाराज ही हैं।

पराशर ने पराशर स्मृति में (जिसे धर्म सभा वाले मानते हैं) स्पष्ट पुनर्विवाह की आज्ञा दी है और पंडित गुरु प्रसाद जी ने इस श्लोक का अर्थ भी स्वामी जी के अनुकूल ही किया है। किन्तु शोक है उन लोगों पर जो अकारण ही जाति के शुभचिन्तकों की पुण्यप्रद बातों और सदुपदेशों से लाभान्वित नहीं होते किन्तु किसी ऋषि की उस सम्मति पर जो वेदशास्त्र के विरुद्ध हो, आचरण न करना चाहिये और सगाई से इस श्लोक का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। क्योंकि सगाई अथवा मंगनी शब्द स्वयं वेद-शास्त्र के विरुद्ध है। देखो सम्पूर्ण तीसरा अध्याय।

सगाई, मुकलावा, गोना, दुरागमन सारी की सारी पोपलीला की प्रथाएं हैं और यदि आपका अर्थ यथार्थ मानें तो सर्वथा असंगत है क्योंकि लाखों कन्याओं की सगाई होने पर जो लड़के मर जाते हैं तो क्या वह रांड हो जाती हैं? उनका श्लोक ६९, ७० के अनुसार आचरण होता है अथवा कभी हुआ? अतः यह आपका अथवा किसी और का कथन और इस पर हठ करना केवल मिथ्या है और यदि इसी अध्याय के श्लोक ७१, ७२ प्रक्षिप्त न मानें जैसा कि आप लोग नहीं मानते तो संभवतः सारा भारत राण्ड हो जावे। अतः क्या ऐसा अर्थ कभी संभव है? अब इसके वास्तविक शब्दार्थ सुनिये

× बुद्धिमानों के लिए इशारा पर्याप्त है।
अलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु। (अनुवादक)

"जिस कन्या का केवल वेदमंत्रों अर्थात् सत्य वाणी से विवाह हुआ हो किन्तु अभी सहवास न हुआ हो अर्थात् अक्षत योनि हो, ऐसी अवस्था में यदि पति मर जाय तो शास्त्र के प्रसिद्ध नियमानुसार उस पति के दूसरे भाई अथवा निकट सम्बन्धी से उसका पुनर्विवाह किया जाए" अतः आपका आक्षेप आशिरः पाद मिथ्या है।

(आक्षेप ४) मनुस्मृति ९।७६ का भी अशुद्धार्थ किया है। सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ११९

(आर्य) निस्सन्देह इन श्लोकों का वास्तविक अर्थ तो यही है कि—

"विवाहित स्त्री का यदि विवाहित पति परदेश गया हो तो आठ वर्ष और कीर्ति के लिये गया हो तो छे और धन के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देखे।"

और आपका यह वचन भी ठीक है कि "जैसाकि केवल इतने शब्दों से पूरा-पूरा अभिप्राय प्रगट नहीं होता, सब टीकाकार इसके आगे अपनी योग्यतानुसार जो व्याख्या उचित समझते हैं बढ़ा कर लिख देते हैं।"

किन्तु हम आपसे पूछते हैं कि लोग क्या-क्या व्याख्या करके बढ़ा देते हैं आपने उनका उल्लेख नहीं किया तो हम बताते हैं। सुनिये—किसी ऋषि की सम्मति है कि नियत समय के व्यतीत होने के पश्चात् स्त्री दूसरा विवाह कर ले। किसी की सम्मति यह है कि अपने पति को ढूंढने के लिये जावे।

किसी की सम्मति है कि भोजन न्यून करके योग में अपना जीवन व्यतीत करे, किसी की यह सम्मति है कि परिश्रम पूर्वक मज़दूरी करके अपनी आयु व्यतीत कर दे। ऐसी-ऐसी बहुत सी सम्मतियां हैं।

अब पाठक न्याय करें और ऊंच नीच सोचकर उत्तर दें कि अच्छी बात क्या है ? उर्दू मनुस्मृति नवलकिशोर के टीकाकारों ने लिखा है कि इसके पश्चात् क्या करना चाहिये इसका वर्णन नारद स्मृति में मनुस्मृति के प्रमाण से लिखा है और इस स्थान पर भी श्लोक ७४ साथ मिलाकर पढ़ना चाहिए (देखो पृ० ३४०)

छः टीका वाली मनुस्मृति में एक दो टीकाकारों की यही सम्मति है। मैक्समूलर ने अपने आंगल अनुवाद में (जो १८८४ ई० में विदेश में प्रकाशित हुआ) भी ऐसी ही टिप्पणी दी है अतः हम अपने पाठकों को अधिक आकृष्ट करना चाहते हैं कि वह विचार करें कि पुरुष जब ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात् विवाह करके स्त्री से वचनबद्ध हो जाए कि हम और तुम एकत्र और एक दूसरे से समस्त सांसारिक कार्यों में सम्मिलित होकर धार्मिक कर्तव्यों का पालन करते रहेंगे तो जब पुरुष ने उस पारस्परिक निर्णय को तोड़ दिया अर्थात् वह सूचना दिये बिना विद्या, धन अथवा यशः प्राप्ति के लिये घर से चला गया किन्तु स्त्री के लिये निर्वाह का प्रबंध नहीं कर गया तथा पत्र व्यवहार का क्रम भी जारी नहीं किया और न तीन से आठ वर्ष तक घर लौटा तथा स्त्री को भी साथ नहीं ले गया। पुरुषों की अवस्था परदेश में जाकर जितनी सदाचार पर स्थिर रहती है वह आप लोगों से छिपी नहीं है। इस अवस्था में स्त्री क्या करे ? इन चार बातों में से किसको वह स्वीकार कर सकती है ? अच्छी बात तो यह है कि पुरुष जब विदेश जाए तो पत्नी को सदैव साथ रखे जैसे रामचन्द्र जी सीता को और बृहस्पति अरुन्धति को अथवा श्रीकृष्ण रुक्मणी को और योरोपियन लोग मेम साहिबों को साथ रखते हैं। यदि किसी कारण

से साथ न रख सके तो निर्वाहार्थ धन भेजता रहे अथवा पत्रव्यवहार करता रहे वह उसके लिये सम्बन्धियों की देखरेख में निर्वाह का प्रबन्ध कर जाय। यदि इनमें से वह किसी बात को पूरी नहीं करता तो उसकी पत्नी को शास्त्रीय आज्ञा है कि वह नियमेन सन्तानाभाव के कारण पुनर्विवाह करे। अब बताइये, इसमें कुछ दोष है अथवा यह समस्त दोषों की जड़ काटने वाली आज्ञा है। इसके साथ नारद स्मृति को विचारपूर्वक देखो।

(आक्षेप ५) सत्यार्थप्रकाश द्वितीय संस्करण पृष्ठ १०५ और तृतीय संस्करण पृ० १०३ में श्री स्वामी जी महाराज ने मनुस्मृति ४।१९० का अर्थ किया है वह अन्य टीकाकारों के विरुद्ध है। दूसरों ने यह अर्थ लिखा है कि जो ब्राह्मण तप और वेदाभ्यास नहीं करता है और दान लिया करता है वह दाता सहित डूबता है जैसे जलमग्न पत्थर की नौका डूबती है।

अब कुछ विचार कीजिये कि स्वामी जी के किये हुए अर्थ में कितनी उत्तमता है अर्थात् उनकी व्याख्या के अनुसार अत्यन्त धर्मार्थ दान लेने वाला भी डूब जाता है। इससे बढ़कर और अधिक पवित्रता क्या होगी?

(खंडन) भ्राता जी! स्वामी जी का भी यही अभिप्राय है किन्तु कुछ आपकी समझ का फेर है। उन्होंने विस्तार अधिक किया है अर्थात् जो ब्रह्मचर्यादि तपरहित है और दान लेता है तथा जो अनपढ़ मूर्ख होकर दान लेता है जो केवल दान पर ही अत्यन्त रुचि रखता है कुछ परमधर्म नहीं कर सकता। यह तीनों गुणों वाला अथवा इनमें से एक, सबही दुःख सागर में डूबेंगे। इसी के साथ स्वामी जी की सम्मति की पुष्टि करने वाले मनुस्मृति के निम्न लोकों २।३ व १।८८ पर ध्यान दीजिये। अतः यह आक्षेप आशिरः पाद आन्तरिक विरोध का कारण और सत्यान्वेषण से कोसों दूर हैं।

(आक्षेप पृ० ४५) स्वामी जी की अनोखी (विचित्र) रीसर्च कि उन्होंने वेदों का प्रकाश अग्नि आदि चार ऋषियों के आत्मा में लिखा है और समस्त ऋषियों के विरुद्ध ब्रह्मा पर नहीं लिखा।

(खंडन) ब्रह्मा को वेद की प्रेरणा होने का वर्णन किसी विश्वस्त ग्रन्थ में नहीं है किन्तु यह पुराणों का मिथ्या अनुकरण है। हम यदि पुराणों और उनकी इस मान्यता को यथार्थ मानें तो ब्रह्मा पर ईश्वरीय प्रेरणा होने के बदले स्वयं ब्रह्मा के जीवन पर एक बड़ा भारी कलंक का टीका लगता है। ब्रह्मा और उसके चार मुख होने की कथा (देखो भागवत, शिवपुराण, देवी भागवतादि) और उसकी पूजा का पवित्र होना सर्वथा विचार योग्य है। अतः न तो ऐसे विचित्र उत्पत्ति वाले कोई ब्रह्मा हुए और न उनका किसी सच्छास्त्र में वर्णन है। वेद द्वारा प्रकाश के कर्त्ता अथवा कोई और यदि ब्रह्मा की कथा को आंखें खोलकर अध्ययन कर लेते तो कदापि ऐसे कामी पुरुष और उसके ऋषित्व तथा उसकी उत्पत्ति पर विश्वास न करते। किन्तु वह बेचारे क्या करें।

अब हम बताते हैं कि गोपथ ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण और मनुस्मृति आदि सनातन ऋषियों के ग्रन्थों में अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा आरंभ सृष्टि के महर्षियों के आत्माओं में वेदों के प्रकाश का वर्णन है (विस्तार देखो वेदभाष्य इन्डोसंस्कृत पं० देवदत्त शास्त्रीकृत)

ब्रह्मा जी पर वेदों का प्रकाश तो मूर्ति पूजा के सिद्धान्त की भान्ति वेद और सच्छास्त्रों के विरुद्ध है। हम इलहामे वेद नामी पुस्तक में इस पर विस्तृत खोज उपस्थित करेंगे।

(आक्षेप पृ० ४६) सत्यार्थप्रकाश पृ० ८७ में ब्राह्मणादि की पुराणोक्त उत्पत्ति पर स्वामी जी ने जो आक्षेप किया है उस पर उपहासात्मक प्रश्नोत्तर किये हैं।

(खंडन) हमारे कायस्थ दयालु को अपने नाम की भांति शिव शक्ति के रूप के अतिरिक्त और कोई आक्षेप करना आता ही नहीं। अच्छा उनकी इच्छा। किन्तु हम इस अवसर पर पुनः उनसे प्रार्थना करते हैं कि वह सत्यार्थप्रकाश के इस लेख को पुनः अध्ययन करें और व्यर्थ सत्पुरुषों की निन्दा न करें।

कारे पाकांरा क़यास अज़ खुदगीर।
गरचेहे मानंद दरनविश्तन शेरोशीर ॥+
तो बसूरत रफ्तह दर मान्दह।
वेदे अक्दसए च मुतलिक़ ख़ान्दा ॥×

स्वामी जी ने तो पवित्र वेद के उस मंत्र का अनुवाद ब्राह्मण व्याख्या कारों के अनुकूल किया। पुनः लिखते हैं कि "सब अंगों से मुख श्रेष्ठ है वैसे ही पूर्ण विद्या और उत्तम गुणकर्म स्वभाव से युक्त होने से मनुष्य जाति में उत्तम ब्राह्मण कहलाता है जब परमेश्वर के निर्विकार होने से मुखादि अंग ही नहीं हैं तो मुख से उत्पन्न होना असंभव है जैसाकि बन्ध्या स्त्री के पुत्र का विवाह का होना।"

ऋषि इतना लिख कर अब पुराणोक्त हठी लोगों पर प्रश्न करते हैं कि जो मुखादि अंगों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारण के सदृश ब्राह्मणादि की आवृति अवश्य होती जैसाकि मुखाकार गोल मोल है वैसे ही उनके शरीर का गोलमोल मुखाकृति के समान होना चाहिये। क्षत्रियों के शरीर भुजा के सदृश, वैश्यों के ऊरु के तुल्य, शूद्रों के शरीर पग के समान आकार वाले होने चाहियें (क्योंकि उनकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न उपादान कारणों से है) किन्तु ऐसा नहीं होता। और यदि कोई तुम से प्रश्न करेगा कि जो-जो मुखादि से उत्पन्न हुए थे उनकी ब्राह्मण संज्ञा हो परन्तु तुम्हारी नहीं, जैसेकि सब लोग गर्भाशय से उत्पन्न होते हैं वैसे ही तुम भी होते हो। तुम मुखादि से उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि संज्ञा का अभिमान करते हो अतः तुम्हारा कथन व्यर्थ अर्थात् अप्रमाण है और जो तुमने अर्थ किया है वह सच्चा ही रहा। अर्थात् वह उन लोगों पर खेद प्रगट करते हैं जिन्होंने झूठी कथाएं बनाकर ब्रह्माजी के मुख को कलंक लगाया अर्थात् उनके मुख को गर्भाशय ठहराया और इसी प्रकार उनके सारे शरीर को भी पुनः उससे गर्भ स्थिति बताई। पुराणों के अनुरूप किसी बुद्धिमान् ने कहा है कि—

"तन शुदा जुमला दाग़ दाग़।
पुंबा कुजा कुजा नही ॥⌐

+ पवित्रात्माओं के कार्य का अनुमान स्वयं कर। यद्यपि फ़ारसी में शेर तथा शीर (दूध) एक जैसा लिखा जाता है।

× तू अपने रूप को बिगाड़ बैठा तूने पवित्रवेद को सर्वथान हीं पढ़ा। (अनुवादक)

⌐ समस्त शरीर आघात पूर्ण है तू रोई (मरहम) कहा रखेगा ? (अनुवादक)

(परिणाम) बुद्धिमान् मनुष्यों से छिपा हुआ न होगा कि स्वामी दयानन्द के प्रगट होने से सब हिन्दू जाति की अवस्था कैसी रद्दी और भद्दी हो रही थी। न दीन का ठिकाना न धर्म का ज्ञान। द्वार-द्वार मट्टी फांकते टकराते फिरते थे। ब्राह्मण जिनका धर्म वेदशास्त्र का प्रचार था वह लोगों का सुधार करने के स्थान पर स्वयं जैनी और वाममार्गी तथा बीजमार्गी होकर कालिमा का टीका लगा चुके थे, क्षत्रिय कुछ रासधारी बनकर और कुछ वेश्याओं के चुंगुल में फंसे हुए तथा मद्यपान सेवी होकर दुष्कर्मों में फंसे हुए दीन-हीन अवस्था में पहुंचे हुए थे और धर्म की दृष्टि से निगाहो, सददाद चखिया बाबा और धोंकल पर जाने अथवा वृक्षों और पत्थरों से मुरादें मांगने के या बहुविवाह के अतिरिक्त सर्वथा जानते ही क्या थे ? वैश्य मैली धोती और रोटी की छूत-छात के अतिरिक्त धर्म का नाम तक न जानते थे। हमारे परममित्र मुंशी इन्द्रमणि जी कुछ फ़ारसी अरबी की शिक्षा प्राप्त कर के अपने धर्म की रक्षा पर कटिबद्ध हुए किन्तु संस्कृत से अनभिज्ञ होने के कारण वह किसी परिणाम पर पहुंचने के लिये सफल न हो सके और वापिसी के प्रायश्चित्त के लिये उनके पास मौनालंबन के अतिरिक्त अन्य क्या उत्तर था। वह स्वयं वैश्य होने और बिरादरी की जंजीर में जकड़े होने के कारण हृदय से मानने पर भी कभी एक पग भी बाहिर न धर सके सुधार तो दूर की बात है। इसी प्रकार ब्राह्म समाज का उभार और उनकी असफलता संसार से कुछ छिपी नहीं। इस आधार पर आर्यसमाज की एक जातीय और धार्मिक सुधारक संस्था के सम्बन्ध से निम्न सुधारों के लिये आवश्यकता थी: —

प्रतिदिन हिन्दुओं का ईसाई और मुसलमान होना, वैदिक धर्म से हटकर भिन्न-भिन्न देवताओं की पूजा करना, परस्पर धर्म कर्म का विरोध, एक दूसरे के हाथ के न खाने पीने को धर्म समझना, नवीन वेदान्त का झक्कड़ और जाति का धर्म कर्म से बेसुध हो जाना- संस्कृत विद्या से निरपेक्ष हो जाना, वाम मार्ग और चोली मार्गादि से जो निर्दयता तथा दुराचार प्रवृत्ति आ गई थी उसको दूर करना, इसी प्रकार के और भी कई कारण थे जिसके लिये एक सुधारक के आने और सुधार करने की अभिलाषा लग रही थी। जिसके पूर्ण करने के हेतु स्वामी दयानन्द का शुभागमन हुआ और यह भी एक विशेष नियम है जिसके अनुसार विरोध भी घर से ही आरम्भ हुआ। अधिक विरोधी अपनी जाति ही हुई। इस भाग्यहीन जाति के सुधार का जिसने बीड़ा उठाया उसी से उसने विरोध किया और उसे शत्रु समझा, पत्थर और ईंटें मारीं, प्रत्युत संगसार किया। विष का प्याला पिलाया और बदनाम किया, दोषी ठहराया। हे अधःपतन को प्राप्त हुई और बेसुध हिन्दू जाति ! सद्धर्म से पतित और मार्ग भ्रष्ट आर्य जाति !

तुम्हीं को जगाता था शंकर बिचारा, तुम्हीं को उठाता कुमारिल सिधारा।
हुआ विष्णु भी था क़ुर्बान तुम्हारा, दयानन्द ने तुम पे सर्वस्व वारा।
तुम्हारी मगर क़ौमेहालत* वही है, हुई सुबह+पर ख़ाबे× ग़फ़लत वही है।

प्रिय ऋषि पुत्रो ! आर्य बन्धुओ !! अब इस न्याय प्रियता के युग में और विशेषतः ऐसी दयालु माता के राज्य में जिसके राज्य में सूर्यास्त भी नहीं होता किन्तु सदैव प्रकाश देता है। आपका

* जाति + प्रातः × बेसुधी की निद्रा।

सोते रहना और उसके दया की छाया *में आराम पाकर भी सत्य वैदिक धर्म की ओर ध्यान न देना कितने दुर्भाग्य का चिह्न है। यदि इस समय भी आपने अंगड़ाई न ली और वैदिक ध्वनि सुनकर भी आपके कान न खुले तथा पूर्ववत् जड़पूजा और वाममार्ग को घिनौनी शिक्षा के रक्तपात से मलिन मन और मद्य के नशा से चूर और घूर्णित रहे तो महाप्रलय तक भी जागना कठिन है।

तुम्हीं अपनी मुश्किल[१] को आसां[२] करोगे, तुम्हीं अपनी मन्जिल[३] का सामां[४] करोगे।
तुम्हीं दर्द[५] का अपने दरमां[६] करोगे, करोगे तुम्हीं कुछ अगर यां करोगे।
छिपा दस्ते[७] हिम्मत[८] में दस्ते क़जा[९] है, मिसल[१०] है कि हिम्मत का हामी[११] ख़ुदा[१२] है।

(नोट) महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा केवल उसकी धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा के कारण से है। अन्यथा विदेशी राज्य की प्रशंसा करना पं० लेखराम जी का अभिप्राय नहीं था। क्योंकि वह एक सरकार से सहायता प्राप्त मिर्जाई पार्टी के साथ शास्त्रार्थों के कारण ही शहादत (बलिदान) को प्राप्त हुये थे। (अनुवादक)

(नोट) उर्दू के कठिन शब्दों के अर्थ—

(१) कठिनाई (२) सरल (३) पड़ाव (४) सामान (५) दु;ख (६) उपचार) (७) हाथ (८) पुरुषार्थ, साहस (९) भाग्य का वरदहस्त (१०) दृष्टान्त (११) सहायक (१२) भगवान्।